मार्च 1995
तीन रुपये

ग्रामीण विद्यालय में शिक्षा में रुचि लेती हुई छात्राएं

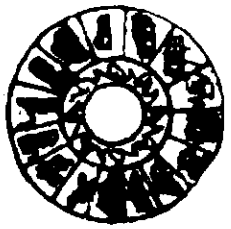

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 40 अंक 5 फाल्गुन-चैत्र 1916-17, मार्च 1995

कार्यकारी संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी
उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	पी० एन० बुलकुंडे
आवरण सज्जा	:	अलका

एक प्रति : तीन रुपये

फोटो साभार : रमेश चंद्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण-विकास मंत्रालय

इस अंक में

ग्रामीण विकास : समर्पित प्रयास की आवश्यकता	डा. अभय कुमार एवं प्रो. ओ. पी. सक्सेना	3
राष्ट्रीय एकता में महिलाओं की भूमिका	आशारानी व्होरा	5
ग्रामीण सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के उपाय	डा. विमला उपाध्याय	7
अपने खेत खलिहानों में मधुमक्खी पालिए	उमेश प्रसाद सिंह	9
जवाब अधूरे हैं (कहानी)	विमला रस्तोगी	10
महिला साक्षरता का विस्तार	सुन्दरलाल कुकरेजा	14
ग्रामीण युवा स्वरोजगार कार्यक्रम	पूनम शर्मा	17
आठवीं योजना में खाद्य प्रशोधन उद्योग	डा. हरे कृष्ण सिंह	18
दूध में रसायनों की मिलावट स्वास्थ्य के लिए घातक	डा. राकेश अग्रवाल	21
कृषि विकास से ग्रामोत्थान की ओर बढ़ते कदम	डा. उमेश चन्द्र	23
रेगिस्तान में पशुपालन व्यवसाय	शंभुदान रतनू	26
पोलीकल्चर पद्धति से मछली पालन	धीरेंद्र कुमार सिंह एवं डा. ए. पी. राव	28
बच्चों में अंधापन : कारण और निवारण	डा. सीताराम सिंह "पंकज"	30
ग्रामीण क्षेत्रों में कारीगरों की कुशलता बढ़ाने के प्रयास	प्रभात कुमार सिंघल	35

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

पाठकों के विचार

"कुरुक्षेत्र" के दिसम्वर 1994 अंक की मानार्थ प्रति मिली। न्यवाद।

यह अंक ग्रामीण स्वच्छता पर एक संदर्भ-ग्रंथ की तरह हत्वपूर्ण और संग्रहणीय है।

डा० कुमार विमल,
पूर्व अध्यक्ष, विहार लोक सेवा आयोग,
96, एम. आई. जी. एच.,
लोहिया नगर, पटना-800020

सदैव की भांति कुरुक्षेत्र का वार्षिकांक प्राप्त हुआ। इसमें ापने गांधी जी के विचारों को विभिन्न लेखकों के व्यक्तिनिष्ठ प्रेषण के साथ प्रकाशित किया है, जो अत्यन्त रुचिकर एवं ाभप्रद था।

भारत के विकास में, गांधीवादी माडल, जो भारतीय सामाजिक रचना के सापेक्ष में था, वह भारत के लिए आदर्श माडल हो कता था यदि इसे पूर्णरूपेण अमल में लाया जाता। यद्यपि भारत ा आर्थिक विकास हुआ है, परन्तु इसने सामाजिक संरचना के राने स्वरूप को नकार पश्चिमी व्यक्तिवाद का स्वरूप ले लिया । जवकि भारत को जापान सादृश स्वदेशी माडल की ावश्यकता थी, बिल्कुल इसके समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों े अनुकूल भारत का माडल। अपना माडल।

73वें संविधान संशोधन से पंचायतों को शक्ति दी गयी है ो शायद ग्रामीण विकास में मदद करे। अव भविष्य में ग्रामीण िकास का काम और कठिन होगा, क्योंकि उचित दिशा-निर्देश े अभाव में पंचायत किसी वर्ग विशेप के हित साधन की एक स्था के रूप में विकसित न हो। ग्रामीण विकास ही भारत के ज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। इसके विना हमारे सभी कार्यक्रम वं प्रयास अधूरे हैं और रहेंगे।

आपके प्रयास को जितना भी सराहा जाए शायद वह कम ी होगा। वास्तव में गांधी जी के सपनों के भारत के लिए कुरुक्षेत्र" एक सशक्त साधन है।

अखिलेश रंजन,
99, परमानन्द कालोनी,
दिल्ली-9

वैसे तो "कुरुक्षेत्र" की लोकप्रियता और उपलब्धियों से मैं पिछले कई महीनों से परिचित था परन्तु पहली वार मुझे दिसम्व 1994 का अंक पढ़ने को मिला। उक्त अंक से रूवरू होने के वा महसूस हुआ कि तमाम विपयों और पत्रिकाओं का अध्ययन कर के बावजूद मैं वहुतेरे तथ्यों से अपरिचित था और उनकी सह जानकारी मुझे अव प्राप्त हुई है।

यों तो इस अंक के लगभग तमाम लेख हमें सच्चाई औ हकीकत से परिचित कराते हैं और उनका दृष्टिकोण ही ह लाभान्वित करना और कुछ जानने की उत्सुकता वनाये रखना है जहां तक अंक की रचनाओं पर अपने विचारों का प्रश्न उठत है तो हमारी नजर डा० अजय श्रीवास्तव और डा० हिमांशु शेख की रचना "सामाजिक आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में मानव म की भूमिका" पर जाकर ठहर जाती है। इस लेख के द्वारा लेखव ने उन विचारों को प्रस्तुत करने की पहल की है जिसकी जानका और तथ्यों से समाज की लगभग आधी आवादी अपरिचित है डा० शेखर और डा० अजय ने उन विपयों को उठाया है जिस शायद ही हम रूवरू हो सकते थे। इसके साथ ही 'ग्रामीण विका और गांधी जी', 'जनसंख्या विस्फोट–विकास का अवरोध' औ 'स्वच्छता : एक जीवन शैली' जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं पर अप अमूल्य विचार देने के लिए भारत सरकार के राज्य मंत्री उत्त भाई एच० पटेल, डा० मदन केवलिया और वेद प्रकाश अरो धन्यवाद के पात्र हैं।

अनीप पुरुपार्थी
आर० के० भवन, शुक्ला टोली
सीवान-841226 (विहार

"कुरुक्षेत्र" दिसम्वर-94 के अंक ने मुझे ग्रामीण विकास व विभिन्न आयामों के गहन अध्ययन के लिये प्रभावित किया है मैं आपके प्रकाशन 'योजना' का नियमित पाठक हूं लेकिन मा दिसम्बर 94 के अंक, जिसमें ग्रामीण स्वच्छता की समस्या प ज्ञानवर्धक सामग्री है, ने मुझे इसका नियमित सदस्यता चन्द भिजवाने के लिये विवश किया और आज ही मैंने वार्षिक चन्द भिजवाया है।

इस पत्रिका के जरिये हम गांवों की समस्याओं के समाधा में विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका अ कर सकते हैं। सरकारी सहयोग, विशेपज्ञों की राय और ग

(शेप पृष्ठ 33 प

ग्रामीण विकास : समर्पित प्रयास की आवश्यकता

डा० अभय कुमार* एवं प्रो० ओ० पी० सक्सेना**

भारतीय अर्थ व्यवस्था मुख्यतः ग्रामीण अर्थ व्यवस्था है। यहां की लगभग 74.3 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। इस प्रकार प्रत्येक चार भारतीयों में से तीन भारतीय गांवों में रहते हैं। देश की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान लगभग 34 प्रतिशत है तथा देश के निर्यात मूल्य का लगभग 25 प्रतिशत प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि क्षेत्र से ही आता है। अतः यह निर्विवाद है कि भारत के आर्थिक विकास का मुख्य आधार ग्रामीण अर्थ व्यवस्था ही है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विकास के लिए कृषि, सिंचाई, पशुपालन, परिवहन एवं संचार, स्वास्थ्य, सहकारिता, ग्रामीण उद्योग आदि के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया तथा अर्थ व्यवस्था के समग्र विकास हेतु विभिन्न कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। इन विकास कार्यक्रमों में सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई०आर०डी०पी०) है। इस कार्यक्रम के साथ-साथ ग्रामीण गरीबी दूर करने के लिए ट्राइसेम, जवाहर रोजगार योजना आदि कार्यक्रम भी देश में चलाये जा रहे हैं।

विभिन्न कार्यक्रमों के मूल्यांकन से यह बात समाने आई है कि इनका लाभ ग्रामीण गरीबों तक पहुंच रहा है। लक्ष्य प्राप्ति में भी सफलता मिली है लेकिन आय बढ़ाने की दृष्टि से उपलब्धियां लगभग आधी ही बैठती हैं। लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति न हो पाने का प्रमुख कारण यह है कि इन कार्यक्रमों के संचालन में समय-समय पर अनेक बाधाएं उत्पन्न होती रही हैं। इन विकास कार्यक्रमों में आने वाली कुछ प्रमुख बाधाएं इस तरह हैं :

जनसहभागिता का अभाव– ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाओं के लाभ उन लोगों को प्राप्त नहीं हो सके हैं जिनके लिए ये योजनाएं शुरू की गई थीं। इसका प्रमुख कारण जनसाधारण की इन योजनाओं के प्रति अज्ञानता तथा विभिन्न योजनाओं की जटिल प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त प्रभावशाली लोग अपने चहेतों को इन कार्यक्रमों के लाभ दिलवाने में सफल हो जाते हैं तथा जरूरतमंद वंचित रह जाते हैं। इसका कारण योजनाओं में लोगों की सक्रिय भागीदारी नहीं है।

नगरों की ओर पलायन की प्रवृति– विभिन्न जनगणनाओं के अनुसार देश में ग्रामीण जनसंख्या का कुल जनसंख्या से प्रतिशत 1951 में 82.4, 1961 में 82.2, 1971 में 80.09, 1981 में 76.4 तथा 1991 में 74.3 था। ग्रामीण जनसंख्या के प्रतिशत में निरंतर होने वाली कमी इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि ग्रामीण क्षेत्रों से जनसंख्या का पलायन नगरों की ओर बढ़ा है। इस पलायन को रोकना होगा ताकि ग्रामीण जनता गांव में ही रहकर अपने विकास के प्रति जागरूक हो।

सामाजिक संस्थाओं की अनुपयुक्तता– ग्रामीण समाज में प्रचलित मान्यताएं और रीतिरिवाज ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। संयुक्त परिवार प्रथा का ह्रास, महिलाओं में शिक्षा की कमी, बाल-विवाह, दहेज प्रथा, धार्मिक अंधविश्वास आदि ग्रामीण विकास को अवरुद्ध करते हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली के ह्रास से कृषि जोतों का आकार छोटा होता जा रहा है। जाति प्रथा ग्रामीण समाज में विघटन उत्पन्न कर रही है।

संसाधनों एवं कार्यक्रमों में समायोजन का अभाव– ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी नहीं है लेकिन उनका उचित दोहन नहीं किया जा सका है। ग्रामीण क्षेत्रों में लागू किये गये विकास कार्यक्रम भी वहां की भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं। वस्तुस्थिति यह है कि केन्द्रीय स्तर पर बनाये गये कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में समान रूप से लागू कर दिये जाते हैं जबकि आवश्यकता इस बात की है कि इन कार्यक्रमों में क्षेत्र-विशेष के अनुसार आवश्यक समायोजन किया जाना चाहिए। उदाहरणस्वरूप पर्वतीय क्षेत्रों की भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियां मैदानी क्षेत्रों से पूर्णतः भिन्न हैं जबकि नियोजन प्रक्रिया समान है। अतः इन कार्यक्रमों के पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं हो सके हैं।

*वरिष्ठ प्रवक्ता, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग
**वरिष्ठ प्रवक्ता, स्नातकोत्तर वाणिज्य संकाय

कास प्रशासन बहुस्तरीय है। एक ओर जिलाधिकारी, ०डी०एम०, तहसीलदार, चिकित्सक, शिक्षक, पटवारी, ग्राम क, ग्रामीण कार्यकर्ता आदि विकास कार्यों के लिए उत्तरदायी ते हैं तथा दूसरी ओर पंचायती राज के प्रतिनिधि--सरपंच, पंच, ान, ब्लाक प्रमुख, जिला प्रमुख आदि होते हैं। जिला प्रशासन अधिकांशतः शहरी क्षेत्रों से आते हैं जो ग्रामीण परिवेश से र्णतया परिचित नहीं होते। ग्रामीण विकास प्रशासन में खण्ड कास अधिकारी प्रमुख अधिकारी होता है जिसे एक ओर ायती राज के प्रतिनिधियों को सन्तुष्ट करना होता है तथा दूसरी ोर वह जिला प्रशासन के प्रति उत्तरदायी भी होता है। अधिकारों ी सीमितता के कारण वह न तो अपने कर्मियों पर पर्याप्त यंत्रण रख पाता है और न ही साधनों, आवश्यकताओं और थमिकताओं में समन्वय स्थापित कर पाता है।

रकारी सेवकों की मानसिकता– ग्रामीण क्षेत्रों में तीन प्रकार से रकारी सेवकों की नियुक्ति की जाती है – (1) प्रथम नियुक्ति रा, (2) पदोन्नति द्वारा, (3) प्रशासनिक आधार पर अर्थात दण्ड तौर पर। इन कर्मचारियों की ग्रामीण क्षेत्रों की संस्कृति, रम्पराओं और समस्याओं के प्रति कोई अभिरुचि नहीं होती। तः नियुक्ति के साथ ही वे अपने स्थानान्तरण हेतु प्रयत्नशील जाते हैं जिससे इन कार्यक्रमों के संचालन में कठिनाई आती । आवासीय तथा शहरी सुख सुविधाओं की कमी के कारण ये ोग अपनी नियुक्ति अवधि में भी गांवों में रुकना नहीं चाहते। सी दशा में ग्रामीण विकास की कल्पना करना भी दुष्कर है।

रचनात्मक सुविधाओं का अभाव– ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, वास्थ्य, विद्युत, पेयजल, यातायात और रोजगार आदि की भारी मी है। इन सुविधाओं के अभाव में ग्रामीण विकास पर्याप्त सीमा क प्रभावित होता है।

क्ष्य प्राप्ति में रुचि– ग्रामीण विकास में संलग्न अधिकारी वर्ग केवल लक्ष्यों की प्राप्ति पर ही बल देते हैं। वास्तविक लाभार्थी ो खोजने में उनकी रुचि कम होती है। उदाहरण के लिए ट्राइसेम कार्यक्रम में लाभार्थी को प्रशिक्षण हेतु भेजने से पूर्व उसकी रुचि आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप प्रशिक्षण के बाद भी लाभार्थी उस व्यवसाय को नहीं अपनाता। वस्तुस्थिति यह है कि लक्ष्य प्राप्ति ही अधिकारी की कुशलता एवं कार्यक्षमता का मापदण्ड बन गई है। इसके अतिरिक्त कार्यक्रम हेतु धन के है। धनराशि का विलम्ब से प्राप्त होना तथा 31 मार्च तक उसके पूरे इस्तेमाल किये जाने पर बल भी अव्यवस्थित व्यय प्रक्रिया को बढ़ावा देता है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की विवेचना से यह दृष्टिगोचर होता है कि कार्यक्रमों की आशातीत सफलता के लिए इनकी क्रियान्वयन प्रक्रिया के पुर्नमूल्यांकन की आवश्यकता है तथा कार्यक्रम की सफलता लक्ष्य-प्राप्ति पर आधारित न होकर लाभ-परिमाण पर आधारित होनी चाहिए। उचित ग्रामीण विकास के लिए ग्राम्य विकास प्रशासन की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रशासन के निचले स्तर पर कर्मचारियों को ग्रामोन्मुख होना चाहिए। इसके लिए उन्हें उचित प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी दूर करने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रमों और कुटीर उद्योगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इससे गांवों में फैली बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी दूर करने में मदद मिलेगी। इसके अतिरिक्त प्रायः यह भी देखा जाता है कि विकास कार्यक्रमों का लाभ केवल प्रभावशाली वर्ग को तथा उससे संबंधित लोगों को ही मिल पाता है जबकि आवश्यकता इस बात की है कि लाभ प्राप्त करने वाला व्यक्ति निम्नतम क्रम का हो। यदि वास्तविक आर्थिक स्थिति को छिपाकर कोई व्यक्ति लाभ प्राप्त करता है तो इसके लिए उसे तथा संबंधित अधिकारी वर्ग को भी दण्डित करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

ग्रामीण विकास की सफलता के लिए उक्त उपायों के अतिरिक्त यह भी निर्विवाद है कि विकास कार्यक्रमों को बनाया जाना तथा लागू करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनकी प्रगति पर निरंतर दृष्टि रखना भी अनिवार्य है। इसके लिए कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी जरूरी है तथा परिस्थितिवश उत्पन्न समस्याओं के निराकरण के उपाय भी किए जाने चाहिए। वस्तुतः ग्रामीण विकास के लिए समर्पित प्रयास की आवश्यकता है जिसमें कार्यक्रम अधिकारी, कर्मचारी और लाभार्थी सभी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सहयोग करें।

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऋषिकेश, देहरादूनः उ० प्र०-249201

राष्ट्रीय एकता में महिलाओं की भूमिका

आशारानी व्होरा

मातृभूमि मां है– जननी मां। एक मां की विभिन्न प्रकृति की संतान की तरह जन-जन के अनेक भेद प्रकृति की ओर से ही मातृभूमि को प्राप्त होते हैं– जन-जन के भेद, उनकी बोलियों के भेद, उनके धर्मों, उनकी विचारधाराओं के भेद। पर ये भेद मानव को विभक्त करने के लिए नहीं हैं। भाइयों-बहनों में स्वभाव, विचार, रुचियों के भेद यदि मां के एक वात्सल्य-भाव से भरे जाते हैं तो देशवासियों के धर्म, भाषा, संप्रदाय के भेद एक राष्ट्रीय भावना से, मातृभूमि की राष्ट्र-वत्सलता से क्यों नहीं भरे जा सकते? यह राष्ट्र-वत्सलता ही मां की भावना है, इसलिए इस भावना को कोई उभार सकता है तो वह नारी ही है।

राष्ट्रीय एकता के लिए जातिगत, धार्मिक या भाषायी एकता अनिवार्य नहीं, ध्येय की एकता चाहिए, मातृभाव की एकता चाहिए। यह संयुक्त भाव, यह संयुक्त ध्येय यदि किसी भौगोलिक इकाई या उसकी सांस्कृतिक परंपरा से संबद्ध हो जाता है तो उसमें प्रेरक शक्ति स्वयं ही आ जाती है। देश के हर संकट काल में इस प्रेरक शक्ति को हमने निकट से देखा-परखा है। आज नारी के इसी भाव-पक्ष को सामने लाया जाना चाहिए।

हमारे इतिहास के पन्ने ऐसी एकता-मिसालों से भरे पड़े हैं। देश की आजादी के लिए लड़ाई हो या सीमा-सुरक्षा के लिए अथवा सांप्रदायिक दंगों से निपटने के लिए, जब-जब यह ध्येय की एकता हमारे सामने रही, हमने विजय पाई और देश प्रगति-पथ पर आगे बढ़ा। विदेशी आक्रमण या दंगे आदि स्थितियों से उत्पन्न आंतरिक गड़बड़ में घर-परिवार की सुरक्षा इससे सर्वाधिक प्रभावित होती है। समाज के इन मोर्चों पर तैनात घर-घर की प्रहरी महिलाएं फिर भला कब पीछे रह सकती हैं! उन्होंने पुरुषों की आंतरिक शक्तियों को जगाकर प्रेरणा रूप में काम किया हो या देश-समाज की रक्षा के लिए उनकी सीधी भागीदारी रही हो, उनका योगदान किसी भी तरह कम नहीं आंका जा सकता।

हुमायूं को राखी भेजकर भारतीय संस्कृति का अर्थ समझाने वाली राजपूत हिंदू नारी कर्मवती ने देश के एक शक्तिशाली शासक को एकता व भाई-चारे का पाठ पढ़ाया था। जहांगीर की न्यायप्रियता के पीछे उसकी प्रेरणा थी–नूरजहां। यदि जहांगीर बाद में स्वयं व्यसनों की गिरफ्त में आकर उत्तराधिकार के झगड़ों का शिकार हो गया तो भी उसके शासन में नूरजहां की प्रेरणा से जारी किए गए बारह फरमानों में नशाबंदी से लेकर हिंदू-मुस्लिम ऐक्य तक की सभी अच्छाइयां शामिल थीं। अपने-अपने राज्य की सीमाओं की रक्षा के लिए अकबर जैसे महान योद्धा से समान रूप से टक्कर लेने वाली गोंडवाना की रानी दुर्गावती और अहमदनगर की सुलताना चांद बीबी में हिंदू-मुसलमानों का कोई भेदभाव न था। दूसरी ओर जोधाबाई ने अकबर की आंतरिक भावनाओं को प्रेरित कर उसके शासन में हिंदू-मुस्लिम जनता के लिए समान व्यवहार व सुविधाओं की व्यवस्था कराई थी।

सन् 1857 के प्रथम बड़े मुक्ति-संग्राम में तो बिना जाति-धर्म के भेदभाव के, हजारों-हजार स्त्रियों ने न केवल अपने पति-पुत्रों की बलि दी, बल्कि अनेक जगहों पर उन्होंने कुशल नेतृत्व ग्रहण कर बेमिसाल रण-कौशल भी दिखाए। फिर वह झांसी की रानी लक्ष्मीबाई हो या लखनऊ की बेगम हजरत महल, और पिछली पंक्ति में रहकर शहीद होने वाली कुमारी मैना हो या नर्तकी अजीजन, आजादी के ध्येय की एकता लेकर लड़ने वाली ये सब एक थीं।

साझी लड़ाई

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद हमारी आजादी की लड़ाई का रूप बदल गया था। लेकिन चाहे कांग्रेस में नरम दल की नीतियां रही हों या गरम दल की गरमजोश गतिविधियां अथवा क्रांतिकारियों की सीधी कार्यवाहियां, ध्येय की एकता इन तीनों धाराओं में पूरी तरह विद्यमान थी। आजादी की इस लड़ाई में महिलाओं का योगदान न केवल शुरू से अंत तक रहा, बल्कि आगे चलकर गांधी जी के आह्वान से उत्तरोत्तर बढ़ता भी गया। उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम और मध्य भारत में देश के कोने-कोने तक फैले इस स्वतंत्रता-संग्राम में देश के सभी प्रांतों, धर्मों, जातियों, वर्गों की महिलाएं समान रूप से शामिल थीं। पंजाब की बी. अमन (अली बंधुओं की मां), पार्वती देवी, बंबई की भीकाजी कामा

र्गावाई, दक्षिण की कमला देवी, रुक्मणि लक्ष्मीपति, बंगाल की ासंती देवी, प्रीतिलता, कल्पना दत्त, मातंगिनी हाजरा, नगालैंड ी रानी गाइदेल्यू--किस-किसका नाम गिनाएं! हिंदू, मुस्लिम, ारसी, नागा, सभी तो थीं इनमें– कंधे से कंधा मिलाए, हाथ ं हाथ डाले। और इनके नेतृत्व में इनके पीछे चलने वाली थीं रीब, अमीर, नीच, ऊंच–सभी वर्गों की असंख्य महिलाएं।

एक ओर महिला संस्थाएं नारी-जागरण, समाज-सुधार और ाजादी की लड़ाई के लिए साथ-साथ कार्य कर रही थीं, दूसरी ोर सरोजिनी नायडू, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसी राष्ट्रीय वयित्रियां देशभक्ति से ओत-प्रोत अपनी रचनाओं द्वारा ार्यकर्ताओं का जोश बढ़ा रही थीं। यहां तक कि गांव की अनपढ़ स्त्रियों द्वारा भी उन दिनों गांधी, जवाहर, भगतसिंह जैसे शहीदों र, चरखे, खादी और जेल-जीवन पर जिस तरह लोकगीतों की चना हुई वह अपने-आप में एक अद्भुत मिसाल थी। जुलूसों े लिए प्रयाण-गीतों की तो कोई सीमा ही न थी और इनमें से धिकांश की रचना करने वाली महिलाएं ही थीं। भारतीय ंस्कृति में नारी की प्रेरणा को जो गौरव प्रदान किया गया है, उसमें ां के दूध की लाज रखने की ललकार और सर पर कफन बांधकर लने वाले कार्यकर्ताओं को बहनों द्वारा रोली या खून से लाल ीका लगाकर उनमें सरफरोशी की तमन्ना भरने वाली पंक्तियों कितना काम किया, क्या उसे आंका जा सकता है? और यह हर पूरे देश में समान रूप से बह रही थी। इसी लहर में हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए आदर्श शादियां भी हुईं–अरुणा ासफअली, श्याम कुमारी खान जैसी उज्ज्वल मिसालें सामने हैं।

सीधी भागीदारी में जेल जाने पर जेलों के भीतर भी स्त्रियों राष्ट्रीय एकता का अनुपम उदाहरण पेश किया था। कमला वी चट्टोपाध्याय ने अपनी पुस्तक में इस एकता और परस्पर त्याग ा अच्छा खाका खींचा है। गांधी जी ने इसे इतिहास में स्वर्णाक्षरों ं लिखने योग्य बताया था।

आजादी के बाद भारत की एकता, अखंडता और मानाधिकार का प्रतीक भारत का नया संविधान बनाने वाली ंविधान-सभा में भी देश के सभी भागों और वर्गों का हिला-प्रतिनिधित्व रहा। महिलाओं की संविधान-निर्माण में ह्स्सेदारी का ही परिणाम है, हमारे संविधान में स्त्री-पुरुष के लिए रावरी के अधिकार, महिला, बाल कल्याण कानून और रंगभेद, ाति-भेद की समाप्ति।

आजादी के बाद भी जब जब देश की सीमाओं पर हमले हुए, ध्येय की एकता साकार हुई और पूरे देश की महिलाएं एकजुट होकर सुरक्षा-कार्यों में हाथ बंटाने के लिए सामने आ गईं। पहली सुरक्षा-पंक्ति में, जहां हमारी सशस्त्र सेना लड़ रही होती है, स्त्रियों की अप्रत्यक्ष भागीदारी रहती है–जवानों के लिए ऊनी वस्त्र, दवाएं, बिस्कुट, पुस्तकें आदि सामग्री एकत्रित करके भेजना, कैंटीन चलाना, सैनिकों के परिवारों की देखभाल में हाथ बंटाना आदि। दूसरी सुरक्षा-पंक्ति होती है, नागरिक सुरक्षा की तथा सहायक सेवाओं की। इस क्षेत्र में स्त्रियों की महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष भागीदारी रहती है–एन. सी. सी., होम गार्ड, नर्सिंग, होम नर्सिंग, प्राथमिक चिकित्सा से लेकर एंबुलेंस चलाने, कंट्रोल रूम, सूचना केंद्र आदि संभालने तक के कामों में। तीसरी सुरक्षा-पंक्ति का काम तो घर-घर से लेकर पूरे समाज तक फैला होता है और यह कार्य होता है, बचत, कीमतों पर नियंत्रण, घरों की सुरक्षा, अफवाहों का निवारण, जन-मत निर्माण आदि क्षेत्रों में। सभी संकट-अवसरों पर यह सिद्ध हो चुका है कि हमारी महिलाओं ने सारे भेदभाव और गिले-शिकवे भुलाकर किस तरह एकजुट हो काम किया। तब न कोई बड़े घर की बहू-बेटी थी, न हिंदू, मुसलमान, सिख की, सब की सब देश की बेटियां थीं और देश का काम कर रही थीं। यही दृश्य किसी भी दंगे या प्राकृतिक विपदा के समय भी देखने को मिलता रहा है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में तो यह एकता बिना किसी संकट काल के, हर दिन, हर जगह दिखाई दे जाएगी। कुछ राजनैतिक नेत्रियां भले ही विचारधाराओं व क्षेत्रों में बंटकर कार्य कर रही हों, देश की आम स्त्रियां निरन्तर निचले तबकों से लेकर ऊपरी संभ्रांत लेडीज़ क्लबों तक हमारा अखंड सांस्कृतिक प्रवाह जारी रखने में सक्रिय हैं। यह प्रक्रिया न पहले कभी रुकी थी, न आज रुकी है। पहले तीर्थाटन की परंपरा हमारी राष्ट्रीय एकता में सहायक रही, आज नगरीय और महानगरीय मिली-जुली कालोनियों की निवास-व्यवस्था ने, रहन सहन के लगभग समान तौर-तरीकों ने, लगभग समान रुचियों व समान फैशन ने विभिन्न प्रांतीय व जातीय भेदभाव मिटा दिए हैं। खानपान, वेशभूषा, रीति रिवाज के अनेक चलन आज ऐसे घुलमिल गए हैं कि विशेष अवसरों पर फिर भी कुछ पहचान अलग दिख जाए, वैसे सब एक ही दिखेंगे। महिला संस्थाओं ने, लेडीज़ क्लबों ने, स्कूलों-कालेजों के सामूहिक उत्सवों ने सारे भेदभाव मिटा दिए हैं।

(शेष पृष्ठ 13 पर)

ग्रामीण सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के उपाय

डा० विमला उपाध्याय

गांवों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ना हो, उसके समग्र विकास का स्वप्न साकार करना हो या गांधी जी के गांवों को स्वर्ग बनाना हो– यह बड़ा जरूरी है कि गांवों को अपनी जमीन से न उखाड़ा जाए, उनके सांस्कृतिक वैभव, धार्मिक विश्वास, आस्थाओं और विरासत पर आंच न आने पाए। उनकी सब प्रकार से रक्षा हो। उन्हें बचाये रखने को प्रोत्साहन मिले, वैसी योजनाएं बनें।

महात्मा गांधी ने कहा है : "मैं नहीं चाहता हूं कि मेरे घर को चारों ओर से दीवारों से घेर दिया जाए। मेरी खिड़कियां तक बंद कर दी जाएं। मैं चाहता हूं कि सभी जगह की सांस्कृतिक हवा मेरे घर के आस-पास उन्मुक्त होकर बहे परन्तु मैं अपने पांव को ही अपनी जमीन से उखाड़ने के विरुद्ध हूं।" "अपनी जमीन" का अर्थ है भारत के सत्तर प्रतिशत लोगों की ग्रामीण संस्कृति, उनकी विरासत, उनकी लोक आस्थाएं जिनके बिना जीवन लड़खड़ा जाता है, पंगु हो जाता है।

ग्रामीण संस्कृति की रक्षा कैसे की जाए

गांवों के लोग भोले-भाले हैं। उनके जीवन में पग-पग पर संघर्ष है। कर्म संकुलता है। वे अपनी रोजी-रोटी के जुगाड़ में रहते हैं। फिर भी लोकगीत उनके होठों पर मचलते हैं। श्रम परिहार का सवाल हो या मनोरंजन का या अपने को उन विश्वासों को गीतों से जोड़ने का, वे सदा तत्पर रहते हैं। हल पूजा हो या बसंत पंचमी, सरस्वती पूजा का दिन हो या गोपाष्टमी (कार्तिक शुक्ल पक्ष अष्टमी) सबके लिए गीतों का विधान है। रोपनी, पिसाई, कटनी, ओसाई, बुनाई, सिंचाई, सब अवसरों पर गीत हैं। अधिकांश गीत लोककंठों में विराजते हैं। कुछ वहां की बोलियों में लिपिबद्ध और मुद्रित भी हैं। उन गीतों की विशेषता है–उनमें उनका विश्वास विराजता है। सुरक्षित रहता है। भव्य आदर्श को सामने रखकर गीतों का विधान किया जाता है।

बसंत पंचमी के दिन हल-फाल की पूजा होती है। उन गीतों में बैलों को शिव का वाहन कहा गया है। वह बल विक्रम का धनी है तो सहिष्णुता का अप्रतिम उदाहरण भी। हल जोतने श्रीकृष्ण के भाई हलधर आते हैं जिनका असली नाम बलराम है। गोपाष्टमी के दिन गाय की पूजा होती है उसे लक्ष्मी मानकर। इसलिए कि वह कामदुधा है। जननी है। माता है। बछड़े को जन्म देकर कृषकीय संस्कृति को प्रोत्साहन देती है। बाछी को जन्म देकर गाय की परंपरा को गति देती है। इतना ही नहीं ग्रामीण जीवन के संस्कारों में पौराणिक, ऐतिहासिक और मिथकीय पुरुष नारी बस गए हैं। उनके यहां पुत्र का जन्म होता है तो लगता है रामजी का जन्म हुआ है। खुशी और उत्साह देखने योग्य होता है :

"रामजी के होलै जनममा हो,
घर घर बाजे बधइया।
कोई लुटावै सोना चांदी,
कोई लुटावै छेन गइया हो,
घर घर बाजे बधइया।।"

बालक के जन्म के अवसर पर सोना-चांदी लुटाना तो साधारण बात है, छेन गाय (दुधारू गाय जो काफी दूध देती है) तक लुटा दी जाती है। कितना अर्थवान है यह सोचना कि बालक नहीं श्रीराम जन्मे हैं। धन संपत्ति से बढ़कर उन्हें छेनु गाय प्यारी है तो उसे दान में दे रहे हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि इन गीतों को सहेजा जाए, इसे गाने के अवसर दिए जाएं और ऐसा वातावरण तैयार किया जाए कि इस विरासत को सुरक्षित रखा जा सके। इन गीतों को फिल्मी धुनों, तर्जों, पैरोडियों आदि से बचाया जाए। इनकी मौलिकता सुरक्षित रखी जाए। इनकी अभिव्यक्ति के अवसर तलाशे जाएं।

ग्रामीण चौपाल और कीर्तन मंडली

कुछ ग्रामीण भले ही निरक्षर हों पर पूरी रामायण कंठस्थ रखते हैं। कोई बात करेंगे प्रमाण के लिए रामायण की चौपाई। मेरे पिता जी रात भर महाभारत की कथा सुनाया करते थे। तब मैं श्लोक का अर्थ कहां समझती थी। पर उनकी शैली, बांधे रखने की क्षमता,

वेमुग्ध रहना पड़ता है। जबकि उन्होंने कालेज में नहीं पढ़ा। स्कूल
ने मैट्रिक परीक्षा में ही प्रांत में प्रथम आए। इसका नतीजा है कि
आज भी मेरी काकी, भाभी आदि के कंठ में वह पूर्ववत विराजमान
हैं। चौपालों पर रामायण पाठ की तरह श्रीमदभागवत और
महाभारत की कथा हो। कालांतर में उन्हें नाट्य रूपांतर मिल सके
तो और अच्छा। उनका रिकार्ड बने। उन्हें बजाया जाए। कीर्तन
मंडली राम-कृष्ण-शिव आदि से जुड़े भजन गाया करे।

गांव के चौपाल न केवल ग्रामीण संस्कृति के प्रहरी और संवर्धक हैं, वहां गांव की महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान भी होता है। वहीं से निर्णय होता है कि अगले दिन सफाई अभियान किस टोले में होगा। कहां से वृक्षारोपण सप्ताह मनाना प्रारंभ किया जाए। ये चौपाल यह भी निर्णय करें कि बटवृक्ष की पूजा (सावित्री सत्यवान प्रसंग), अक्षय वृक्ष की पूजा (अक्षय नवमी) या वृक्षों की पूजा के, जो भी विधान हों, वृक्ष की पूजा कर करके औपचारिकता का निर्वाह न हो। उन वृक्षों के आसपास की भूमि की सफाई हो, सिंचाई हो और वैसे ही कुछ वृक्ष भावी पीढ़ी के लिए लगा दिए जाएं। ऐसा विधान गोपाष्टमी पर भी हो।

1947 और 1948 की बात है– प्रभात फेरी का कार्यक्रम नियमित चलता था। अगहन-पूस का कड़कता जाड़ा हो या जेठ-बैसाख की प्रचंड गर्मी, इसका क्रम कभी नहीं टूटता था। इसकी तीन खूबियां थीं :

(क) प्रातः काल निश्चित रूप से जगना और प्राणवायु पाना।

(ख) पारस्परिक मिलन और राष्ट्रगीत गाना, महापुरुषों की विरुदावली गाना। इससे ऊंचे संस्कार भरे जाते थे। राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बल मिलता था।

(ग) सामूहिक रूप से समाज सुधार, ग्रामोन्नयन के लिए संकल्प लेना और उस पर काम करना।

इस प्रभात फेरी कार्यक्रम ने गांवों की सफाई की। निरक्षरता मिटाने का प्रयास किया। पेड़ लगवाए। रामायण पाठ करवाया। बिना दहेज के कई सौ शादियां करवाई। आज गांव शहर की ओर भाग रहा है। गांव की मुख्य धारा से लोग कटते जा रहे हैं। आत्म-केन्द्रण बढ़ता जा रहा है। लोग चौपालों में जाना या अपने पारंपरिक गीतों को गाना हीन काम समझते हैं। कुछ दूरदर्शन का कुप्रभाव है। कुछ विदेशी संस्कृति का प्रभाव। नकल की खामियाजा। इससे बचने की आवश्यकता है। लोगों को जागरूक करना है।

आत्मा की यह ज्योति फूटती अंतर से

संस्कृति आत्मा की भाषा है। यह परिष्कार जानती है। परिमार्जन मानती है। पराई पीर की पहचान इसकी पहली शर्त है। परोपकार को यह पुण्य मानती है। परपीड़ा इसके लिए घोर पाप है। बाहरी चमक-दमक, वेश- विन्यास, तौर तरीके से सभ्यता भले ही आ सकती है। संस्कृति का उससे दूर का भी रिश्ता नहीं है। इसीलिए दिनकर ने कहा है :

"यह न बाह्य उपकरण भार बन,
जो आए ऊपर से।
आत्मा की यह ज्योति फूटती,
सदा विमल अंतर से।"

ग्रामीणों के षोडश संस्कार हों या कोई उत्सव आयोजन, सभी में उनकी सांस्कृतिक विरासत देखते ही बनती है। खरीफ के नवान्न उत्सव के दिन नये चूड़े, दही, दूध, घी, मधु, शक्कर, केले आदि को मिलाकर पंचामृत बनता है। पहली आहुति अग्नि को दी जाती है। अग्नि ही कारण है हमारे पालन-पोषण का। उसी प्रकार रबी फसल तैयार होने पर फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन उत्सव मनाया जाता है। जौ, गेहूं, चने आदि की बालियां गायन-वादन के साथ अग्नि को समर्पित की जाती हैं।

प० जवाहर लाल नेहरू ने कहा है– "तुम अपने मुल्क की तरक्की चाहते हो तो गांव जाओ। वहां के पुराने तौर तरीके देखो, तहजीब देखो। वक्त-वक्त पर गाये जाने वाले उनके लोक गीत देखो। हिंदुस्तान वहां पूरा महफूज मिलेगा।" आज सरकार, प्रबुद्ध जनता, ग्रामीण तथा स्वयंसेवी संस्थाओं का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे गांव की सांस्कृतिक विरासत और संपदा का न केवल संरक्षण करें वरन् जन-जन में उनके प्रति चेतना जागृत करें। इसी से गांव अपने आदर्शों व विरासत के आलोक में अपना वर्तमान सहेज सकेगा।

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,
एस. एस. एल. एन. टी. स्नातकोत्तर
महिला महाविद्यालय,
धनबाद (बिहार)-826001

अपने खेत खलिहानों में मधुमक्खी पालिए

उमेश प्रसाद सिंह

मधुमक्खी पालन एक ऐसा रोजगार है जिसमें कम पूंजी लगाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस व्यवसाय के लिए लम्बे-चौड़े क्षेत्रफल के भूखंड या बड़े भवनों की जरूरत नहीं है। मधुमक्खी पालने के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान आपका बाग-बगीचा, धान, सरसों या अरहर के पौधे से भरा-पूरा खेत-खलिहान है। ऐसे खेत जिसके चारों ओर सफेदा के पेड़ लगे हैं, मधुमक्खी पालन का सबसे अच्छे स्थान है। आसपास के फूल समाप्त होने वाले हैं तो मधुमक्खियों का बक्सा दूसरे फूल वाले खेतों में रखना चाहिए, ऐसा करने से शहद का उत्पादन अधिक होगा।

मधुमक्खियों के घर यदि फलों के किसी उपजाऊ बगीचे में रखे जाएं तो बहुत ही अच्छा है। गर्मी के दिनों में पेड़ मक्खियों के घरों पर छाया देते हैं। फूलने के दिनों में मक्खियां आहार की खोज में दूर न जाकर इनसे ही बहुत कुछ भोजन प्राप्त कर लेती हैं। मक्खियों का बाग में गूंजना बहुत ही सुन्दर लगता है। उन स्थानों में जहां बहुत ठंडी या बहुत गर्म हवा चलती है मक्खियों के घरों का मुंह उल्टी दिशा में रखना चाहिए। इससे हवा छतों में वेग से घुसने नहीं पाएगी।

मधुमक्खी पालक को पुष्प-प्रेमी और कर्त्तव्यशील होना चाहिए। यह उद्योग आलसी और अकर्मण्य व्यक्तियों के लिए नहीं है। यदि परिश्रमी व्यक्ति इस व्यवसाय में पचास हजार रुपये की पूंजी लगाता है तो उसे आठ दस हजार रुपये की मासिक आमदनी होगी।

यह व्यवसाय आरम्भ करने के लिए ग्रामीण बेरोजगार नौजवानों को बैंकों द्वारा कर्ज दिया जाता है। कुछ राज्य सरकारें मधुमक्खी पालक बक्सा मुफ्त में देती हैं।

व्यापारिक ढंग से इस उद्योग को आरम्भ करने वाले व्यक्ति को हो सके तो किसी अनुभवी व्यक्ति से प्रशिक्षण लेना चाहिए। उसे खादी ग्रामोद्योग संघ द्वारा समय-समय पर आयोजित प्रशिक्षण कार्यों में भाग लेना चाहिए। नैनीताल के पास ज्वालाकोटी स्थान पर 'गवर्नमेंट बी कीपिंग इन्स्टीट्यूट' से सम्पर्क करना चाहिए। मक्खीपालक बक्सा मजबूत केल की लकड़ी का होना चाहिए। बक्से की लम्बाई बीस इंच, चौड़ाई सोलह इंच और ऊंचाई नौ इंच की हो। एक बक्से में अनुमानतः पचास हजार तक मक्खियां रहती हैं। एक बक्से से साल भर में आठ से लेकर तीस लीटर तक मधु प्राप्त किया जा सकता है। मधुमक्खियों से युक्त बक्सा खरीदते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि मधुमक्खियां किसी अनुभवी व्यक्ति द्वारा पाली गई हों। जिन घरों को वह खरीद रहा है उनमें कोई रोग तो नहीं है। खरीदे जाने वाला घर मजबूत हो तथा उसमें मकरंद और पराग काफी हो।

मधुमक्खियों के घरों को पास-पास नहीं रखते हैं। पास-पास रखने से मक्खियों को एक साथ काम करने में असुविधा होती है। एक मक्खी कुटुम्ब पर दूसरे का डाका पड़ने का डर रहता है। बरसात में मक्खियों के घरों को इस प्रकार रखना चाहिए कि पिछले भाग की अपेक्षाकृत अगला भाग तीन-चार इंच नीचे रहे। ऐसा करने से पानी अन्दर नहीं जा सकेगा।

मधुमक्खी पालन में शहद, मोम, मक्खियों के घरों और रानी मधुमक्खी को बेचने से अच्छी आय हो सकती है। मधुमक्खियों के छत्ते से शहद निकालने में अत्यधिक सावधानी की जरूरत होती है। सबसे पहले करीने से एक बक्से से दूसरे बक्से में मक्खियों का हस्तान्तरण कर देते हैं फिर छत्ते निकालकर मशीनों द्वारा उनमें से शहद निकालते हैं। छत्तों की मोमयुक्त परत को भी निकाल लेते हैं। छत्तों का प्रत्यारोपण कर देते हैं। इस काम में तीन से छह व्यक्ति लगते हैं। पुरानी रीति से शहद निकालने में अनेक दोष हैं। छत्तों को निचोड़ने से अंडे-बच्चे कुचले जाते हैं जिससे शुद्ध शहद प्राप्त नहीं होता। इससे मूल्यवान वस्तु मोम का दुरूपयोग होता है। मक्खियों को छत्ता बनाने में ही अपनी सारी शक्ति और समय नष्ट करना पड़ता है। मक्खियों को छत्ते का एक किलो मोम बनाने में दस से पन्द्रह लीटर शहद खर्च करना पड़ता है। वर्तमान प्रणाली की अनेक विशेषताएं हैं जैसे हम जब चाहे घरों को खोलकर देख सकते हैं, आवश्यकता अनुसार धूप

(शेष पृष्ठ 16 पर)

जवाब अधूरे हैं

विमला रस्तोगी

अभी दो महीने पहले बस स्टेन्ड पर मुझे अचानक बेला दिखाई दे गई। मेरी निगाहें उस पर टिक गईं। दिमाग की सारी यमनियों ने याददाश्त बटोरकर मुझे मानने पर मजबूर किया "यह ला ही है।" उसका थका-थका कांतिहीन चेहरा मुझे बार-बार ुविधा में डाल जाता। पुनः गौर से देखा, उसके मोटे-मोटे भरे-भरे ालों की जगह एकदम पिचके गाल, गोरा रंग गेहुंआ हो गया। स्सीकूद, कबड्डी, ऊंची कूद, लम्बी कूद में भाग लेने वाली चुलबुली ला इतनी थकी, इतनी बुझी-बुझी सी। बेला अकेली थी। उसका ध्यान किसी और तरफ था, उसने मुझे नहीं देखा। लगता था किसी लझन में थी। मेरा सब्र बांध तोड़ रहा था। वह मेरी तरफ अब खे, तब देखे, की प्रतीक्षा व्यर्थ गई। मैं चार छः लम्बे डग भरती सके पास पहुंची, अपने ब्रीफ केस को जानबूझकर ठक से उसके स जमाया, उसका मुख मेरी तरफ घूमा। मेरे चेहरे पर जमी सकी निगाहें जब तक मुझे पहचानती मैं तपाक से बोल ड़ी—"तुम बेला हो न"।

"हां,.....अरे पुष्पा तुम! बड़े दिनों बाद दीखी पुष्पा कदम ईद का चांद हो गई" गिले शिकवे का पहला वाक्य।

"हूं, तू जैसे रोज मिलती है। अब भी मैंने ही देखा, मैंने ही ुचाना, महारानी उधर टकटकी लगाए क्या देख रही थी?"

"मेरी ननद को मेरठ से आना है, उन्हें लेने आई हूं। तुम हां हो आजकल....?"

"यह क्या तुम-तुम लगा रखी है?"

"अच्छा बाबा, तू कहां है आजकल?"

"हलद्वानी में हूं? मां से मिलने दो दिन को आई थी।"

"अकेली, बच्चे कहां हैं?"

"बच्चे नहीं बच्चा। एक बेटा है, तीन वर्ष का।" सासु जी से बहुत हिला है, मेरे पीछे आराम से रह जाता है। मैं ही बोले जा रही हूं। तू भी तो बता। तेरे बच्चे तो अब बड़े हो गए होंगे। मुझसे चार साल पहले शादी हो गई थी तेरी। कितने बच्चे हैं?"

"अपनी पूरी पल्टन है, न पूछ वही अच्छा। कभी मेरे घर भी आने का कष्ट करना।"

"कैसी बातें कर रही है बेला! शादी के बाद मेरा रहना ही बहुत कम हुआ है। अब मैं एक महीने बाद पन्द्रह दिन के लिए यहां आऊंगी, बड़ी जीजी की लड़की की शादी है, उन दिनों तेरे घर जरूर आऊंगी। पक्का वादा रहा। तू मुझे अपना पता बता दे।" मैंने पर्स से डायरी निकालकर जल्दी से उसका पता लिखा। इतने में मेरा भाई आ गया।

"चली दीदी, हलद्वानी वाली बस आ गई, जल्दी करो, कहीं बस छूट न जाए।" भाई ने जल्दी से मेरा सामान उठाया। मैं चलते-चलते बोली "जीजी की लड़की की शादी का कार्ड भेजूंगी, बेला जरूर आना।

मुझे बस में बैठाकर भाई नीचे उतर गया, बस में बैठने के बाद मैं बेला को देख नहीं पाई। कुछ ही मिनटों में बस चल दी और मेरा दिमाग चल दिया अतीत की गलियों में। विद्यार्थी जीवन के वे कुछ वर्ष चलचित्र से निगाहों के सामने घूम गए। बारहवीं तक हम दोनों साथ पढ़े थे। बेला बहुत होशियार छात्राओं में नहीं थी। लेकिन मेहनती थी, कभी फेल नहीं हुई। वह एक खाते-पीते परिवार की लड़की थी। पिता परचून की दुकान करते थे। कई भाई बहन थे। उसकी कद काठी अच्छी थी, गोरा रंग, लम्बा चेहरा, ऊंचा माथा, आंखें चेहरे पर फबती हुईं। बारहवीं की परीक्षा खत्म होने के आठ दिन बाद ही पता चला कि बेला के पिता जी उसका रिश्ता कर रहे हैं। दो दिन बाद बेला मिली। मैंने पूछा— बेला! "मैंने जो सुना सच है, तू शादी करा रही है?"

"बाबा को बहुत जल्दी है।"

"क्यों? अभी तेरी पढ़ाई..... तू आगे पढ़ना चाहती है न।"

"हां, पर बाबा कहते हैं इस समय लड़का मिल रहा है। कोई मांग भी नहीं है। चार-चार लड़कियों का बोझ है बाबा के सिर पर। देखने में मुझसे छोटी चंदा मुझसे बड़ी लगती है। मुई कैसी पहाड़े सी निकली है।" कहते हुए बेला की आंखों में घर बसाकर सुख से रहने की तृप्त भावना साफ दिखाई पड़ रही थी। अधूरी इच्छाएं विवाह के बाद पूर्णता पाना चाहती थीं। अतः कोई न नुकर नहीं, कोई प्रतिकार नहीं, चेहरे पर सहज-सा लहराता आत्म-संतोष।"

चाहकर भी मैं बेला की शादी में शामिल नहीं हो सकी। हम सब मामा जी की लड़की की शादी में देहरादून चले गए। देहरादून से लौटने पर बेला से मिलना हो गया। वह आठ दिन के लिए बुलायके आई हुई थी। वह खुद ही हमारे घर आ गई। सिंदूर से भरी चौड़ी मांग, कामदार साड़ी, चूड़ियों से भरे हाथ, छम छम बजायजेब, सजी धजी सुन्दर लग रही थी, साथ ही खुश भी।

मां ने पूछा—"बेला खुश तो हो, सास ससुर कैसे हैं?"

"अच्छे हैं आंटी"

"और सब"

"और है ही कौन? सब ननदों की शादी हो गई। एक देवर है छोटा, वह फिलहाल जेठ के पास रहता है।" बताते हुए उसने मुंह दिखाई में मिले छोटे-छोटे उपहारों को बड़े चाव से बताया। मैं सोचने लगी, 'कितनी संतोषी है बेला! हर छोटी भेंट को उसने भर-भर आंचल स्वीकारा है। जैसे उसने रईस घर की चाहना ही न की हो।' "जैसे हम हैं वैसे ही वे लोग, अब मुझे कोई डाक्टर, इंजीनियर तो मिलने से रहा, हर लड़की अफसर ही चाहने लगी तो बाकी लड़के क्या कुंवारे रहेंगे" इतना कहकर वह खुद जोर से हंस दी। मुझे और मां को भी हंसी आ गई। कितना कड़वा सच छिपा था उसकी बात में।

मैं आगे पढ़ाई करने मेरठ चली गई। एक बार घर आने पर पता चला, बेला के पिता जी ने मकान खरीद लिया है, जो हमारे घर से बहुत दूर था। अतः बेला से मिलना संभव न हो सका।

"बीस या तीस मिनट में हलद्वानी आने वाला है" पास बैठे यात्री के कहने पर मैं चौंकी। स्मृतियों के घेरे में समय तिनके की तरह उड़ गया। पता ही न चला। मैं सचेत हुई, अपना सामान वगैरा सम्भाला।

घर पहुंचते ही अंकित दौड़कर मेरे पास आया। उसे सीने से लगाते ही मैं बेला को भूल गई। अंकित की तुतलाती बोली ने मेरी थकान उतार दी।

ननद जी ने अपनी बेटी की शादी की काफी जिम्मेदारियां मुझे सौंप दी थी। उसके बाद का समय उन तैयारियों में बीतने लगा। रखी तारीख जल्दी आ जाती है। शादी की तारीख से दो दिन पहले मैं रामपुर आ गई। विवाह का दिन आ गया। मेहमानों की गहमागहमी में मैं बेला को ढूंढ रही थी। बेला की एक रिश्तेदार आई भी थी। उन्होंने अपनी बातों में बेला का जिक्र भी नहीं किया। मैं उनसे पूछना चाहकर भी न पूछ सकी।

भान्जी निशा के विदा होते ही घर में अजीब-सा सन्नाटा छा गया। "बेटी तो होती ही पराया धन है। पाल पोसकर पांच हाथ की करो और दूसरों के हवाले कर दो" रिश्ते की एक दादी जी उस सन्नाटे को चीरकर बोल पड़ी। फिर क्या था एक-एक, दो-दो वाक्य सभी ने बोलने शुरू कर दिए। इसी बीच मेहमानों ने भी जाना शुरू कर दिया।

अत्यधिक थकान के कारण मैं उस शाम सांझ ढले ही सो गई। अगले दिन उठी तो बार-बार बेला का ध्यान आने लगा। उसका मौसमी-सा निचुड़ा चेहरा मेरे दिमाग के कैमरे में बार-बार आ जाता। लगभग तीन बजे शाम को मैं बेला के घर जाने को तैयार हो गई।

रिक्शा ऊंची नीची सड़कों के सीने पर दौड़ा जा रहा था। मैं सोच रही थी— जाते ही आड़े हाथों लूंगी। एक ही शहर में एक घंटे को भी नहीं आ सकती थी। ऐसे मौकों पर ही सबसे मिलना हो जाता है। बेला तो शादी में जाने की बहुत ही शौकीन थी। नाचना गाना भी खूब आता है। उसके यहां आने से गाने बजाने में कितनी रौनक आ जाती।

"बहन जी आपका बताया मोहल्ला तो आ गया।" रिक्शा वाले के कहने पर मैं सोच विचार से जागी। मैंने वहां खेल रहे लड़कों को बुलाकर पूछा--"बेला गुप्ता का मकान जानते हो, उनके

पति का नाम देवेन्द्र गुप्ता है।" वह लड़का कुछ सोचने लगा। तभी वहां दूसरा लड़का आ गया। पहले वाले ने उससे कहा--"अरे यह बेला बहन जी का मकान पूछ रही हैं।" दूसरे ने बताया--"यहां से सीधे जाकर बाएं हाथ की गली में मुड़ना, वहां चुंगी का नल लगा है, उसी से दूसरा मकान है।" रिक्शा आगे बढ़ा ठीक उस लड़के के बताये स्थान पर रोक दिया। मकान के बाहर ही कुछ बच्चे खेल रहे थे। मैंने पूछा– "बेला बहन जी का मकान यही है?"

"हां, क्या काम है उनसे?" उस बच्चे ने पूछा।

"मैं उनकी सहेली हूं, उनसे मिलने आई हूं।" रिक्शा वाले को पैसे देते हुए मैंने कहा।

"तब तो आप मेरी आंटी हुई।"

"तुम बेला के बेटे हो?"

"हां" कहता हुआ वह बच्चा मुझे अपने घर ले गया। घर क्या था एक बड़ा कमरा था। मैंने निगाह दौड़ाई। एक कोने में दो चारपाई पड़ी थीं। उसी में से एक पर दो बच्चे सोए हुए थे, एक कोने में चार संदूक और एक अटैची करीने से रखे थे। पर्दे से ढकी दो अलमारियां थी। एक कोने में मेज़ पर कुछ बर्तन, मसालेदानी, कुछ डिब्बे तथा गैस का चूल्हा रखा था।

"तुम्हारी मम्मी कहां है?"

"बस आती ही होगी चार बजे तक आ जाती है। आंटी, आप बैठिए।" कुर्सी को मेरी तरफ सरकाता हुआ वह बोला– और झट से एक गिलास पानी मेरे लिए ले आया। मैं उसकी फुर्ती देखती रह गई। नाम पूछने पर वह बोला–"मेरा नाम अशोक है और इसका विवेक। मम्मी हमें अक्कू और विक्कू कहती हैं। विक्कू से छोटी बहन है पिंकी, उसके पास सो रहा है छोटू।"

"तुम कितने भाई बहन हो?"

"पांच, बड़ा भाई पापा के साथ दुकान पर बैठता है।"

बेला की सारी स्थिति स्वयं ही मेरे सामने खुल गई।

"तुम्हारी मम्मी किस स्कूल में पढ़ाती है?"

"एक गांव के प्राइमरी स्कूल में।"

"कैसे जाती है वहां?"

"यहां से बस स्टैंड, वहां से बस में, फिर बस से उतर क उस गांव के स्कूल में। लौटते में एक ट्यूशन पढ़ाती आती है उस बच्चे का घर बस स्टैंड के पास ही है", अशोक ने बताया मेरा अवचेतन मन कहीं और था। मेरे मन के क्षितिज पर तमाम तनावों के बीच नितांत अकेली खड़ी थी बेला, आत्मरत, कर्मठ उसकी उमंगों को तनाव ने पूरी तरह निगल लिया था। समझदा बेला इतनी नासमझ कैसे हो गई। यह जरा से बच्चे, अभावों में पले, खुद अपनी देखभाल करते क्या सपने लेकर बड़े होंगे? क्य होगा इनका भविष्य? मुझे बेला से वितृष्णा होने लगी। तभी उस घरनुमा कमरे में बेला ने कदम रखा–थका हारा सूखा चेहरा, जल्दी चलने से हांफती सांस, श्रांत, क्लांत सी बेला मुझे अपने घर में देखते ही चौंक पड़ी–"अरे पुष्पा तुम कब आई? अक्कू आंटी को पानी पिलाया, चाय पिलाई?" कहते हुए एक खिसयाहट उसके चेहरे पर पुत गई।

"मेरी चिंता न कर मैंने पानी पी लिया है, विक्कू बेटे अपनी मम्मी के लिए पानी लाओ।" विक्कू तुरंत एक गिलास पानी ले आया।

"बहुत मेहनत करनी पड़ती है बेला तुझे। कभी अपने शरीर को देखा है? कब तक खींचेगी इसे?"

"ढो रही हूं जैसे तैसे, क्या करूं? सबकी किस्मत में सुख नहीं होता। शादी के समय वह एक प्राइवेट फर्म में नौकरी करते थे ठीक से गुजारा हो जाता था। कई वर्ष रहे वहां।

"फिर क्या हुआ?" "फर्म के मालिक की मृत्यु हो गई। उसके बेटों से इनकी पटरी नहीं बैठी। इन्होंने नौकरी छोड़ दी। उसके बाद अपना काम करने के चक्कर में घर की जमा पूंजी भी गंवा दी। जो काम किया घाटा ही हुआ। इस बीच मैंने नर्सरी टीचर ट्रेनिंग की।"

"बड़े परिवार की गलती तू कैसे कर बैठी?"

"तेरे इस प्रश्न का उत्तर नहीं है मेरे पास। इन्होंने मेरी एक न मानी। लड़कों के रूप में इन्हें चैक नजर आने लगे। इनके बड़

भाई के एक लड़की है। उसके बाद चाहते हुए भी दूसरा बच्चा न हुआ। अतः सास को अपने ये पोते स्वर्ग की सीढ़ी नजर आते थे। कहती थीं कुछ ही सालों की पेरशानी है, बड़े होकर एक साथ जवान होंगे। तुझे कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। महारानी बनकर रहेगी। खुद तो भगवान को प्यारी हो गई। मैं मात्र नौकरानी बनकर रह गई। सबसे छोटे को हमारे एक रिश्तेदार ने गोद लेने को कहा था पर बाद में वह भी मुकर गए। अपना खून पिलाकर पाल रही हूं इन्हें। केवल ईश्वर का सहारा है। बड़े बेटे को घर के कामों में ज्यादा लगाया। उसका पढ़ाई में जो मन था वह भी नहीं रहा।''

''यह क्या किया तूने?'' औरों के बच्चों को पढ़ाती है और अपने को!''

''एक गलती के लिए सौ सजाएं भुगतनी पड़ती हैं। अब मैंने उस पर ज्यादा ध्यान देना शुरू किया है।'' इतना कहकर वह मेरे लिए चाय बनाने लगी। इस बीच उसने मुंह हाथ धोया, बाल संवारे।

''बेला ने अच्छी चाय बनाई थी। पहला घूंट सिप करते ही मेरे मुंह से ''वाह'' निकली। बेला गद्‌गद् हो गई। हम दोनों सहेलियां चाय का पूरा आनंद उठा भी न पाईं कि अक्कू बदहवास सा घर में भागा आया—''मम्मी, विक्कू का सिर फट गया, खून निकल रहा है।''

''वह है कहां?'' बदहवास सी बेला बाहर को भागी, पीछे-पीछे मैं भी.....

खेल-खेल में किसी बच्चे ने विक्कू के सिर पर पत्थर दे मारा। सिर से खून निकल रहा था, कमीज पर भी धब्बे आ गए थे .....

''हाय हाय कितना खून निकल रहा है! मेरी ही नजर लग गई। आग लगे मेरी इस जुबान को, हर समय इन बच्चों को ही बुरा बुरा कहती हूं।''

विक्कू को फौरन डाक्टर के पास ले गए। टांके लगाकर डाक्टर ने ड्रेसिंग की। विक्कू घर आकर सो गया। ''मौका लगा तो कल फिर आऊंगी अब चलती हूं।'' मैंने अपने पर्स में से सौ सौ के दो नोट निकाले और चुपके से बेला की मुट्ठी में दबाते हुए बोली—''विक्कू के लिए हैं। प्लीज कुछ और मत समझना।'' बेला कुछ कहे इससे पहले मैंने उसके होठों पर हाथ रख दिया। उसकी निरुत्तर आंखे कृतज्ञ सी मुझे जाते देखती रहीं। अधूरे जवाबों की गठरी लिए मैं रिक्शे में बैठ गई।

''आयाम''
127, गगन विहार,
दिल्ली-51

(पृष्ठ 6 का शेष)

राष्ट्रीय एकता में...

फिर भी घरों में माताओं की और शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों की विशेष भूमिका रेखांकित करनी होगी कि बच्चों को घर-परिवार में और शिक्षण संस्थाओं में ऐक्य-संस्कार मिलें। राष्ट्रीय भावात्मक एकता बनाए रखने में माताओं और शिक्षिकाओं की अधिक जिम्मेदारी है, इसलिए इनकी भूमिका को विशेष रूप से प्रभावकारी बनाने में हम सभी का सहयोग अपेक्षित है कि किसी भी आड़े समय में विखंडन को कोई राह न मिले और हम सब मिलजुल कर देश के निर्माण में अपनी रचनात्मक भूमिका निभाएं।

जी-302, सेक्टर 22,
नोएडा-201301

महिला साक्षरता का विस्तार

सुंदरलाल कुकरेजा

समाज में समानता व सामाजिक न्याय के लिए महिलाओं की शिक्षा को रणनीति का अति महत्वपूर्ण अंग माना गया है। भारत के संविधान में शिक्षा को हर बच्चे का मूल अधिकार स्वीकार किया गया है और संविधान की धारा 45 में राज्य का यह दायित्व माना गया है कि 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराई जाए। इस दिशा में अब तक जो भी प्रयास किए गए हैं, उनमें महिलाओं की शिक्षा और साक्षरता पर विशेष बल दिया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में हमारे प्रयास इस तथ्य से प्रेरित होते रहे हैं कि एक पुरुष की शिक्षा से एक व्यक्ति साक्षर होता है किन्तु एक महिला की शिक्षा पूरे परिवार को साक्षर बनाती है।

सन् 1986 में प्रस्तुत की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार का एक उल्लेखनीय दस्तावेज है। इस नीति में सबके लिए समान शिक्षा के अवसर तथा सामाजिक समानता की धारणा से भी आगे बढ़कर, शिक्षा और साक्षरता को महिलाओं की समानता व अधिकारों का साधन माना गया है। इस नीति के क्रियान्वयन के लिए 1992 में संशोधित कार्य योजना में इसे बहुत स्पष्ट कर दिया गया कि शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर किया जाएगा और महिलाओं की साक्षरता पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

इस कार्य योजना में महिलाओं की शिक्षा पर इतना बल दिया गया है कि इस कार्य को व्यक्तिगत प्रयासों, निष्ठा व समर्पण पर ही छोड़कर, शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय सभी व्यक्तियों, संस्थाओं और संगठनों से यह अपेक्षा की गई है कि वे महिलाओं और बालिकाओं की शिक्षा पर अधिक ध्यान दें और उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करें। उनसे यह अपेक्षा भी की गई है कि वे न केवल योजना बनाएं, बल्कि उसे क्रियान्वित भी करें।

शिक्षा सुविधाओं का विस्तार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही और विशेषकर पंचवर्षीय योजनाएं लागू होने के बाद से, भारत में शिक्षा सुविधाओं का काफी विस्तार हुआ है। आठवीं योजना के आरंभ से पहले तक के प्राप्त आंकड़ों के अनुसार पिछले चार दशकों में शिक्षा का काफी प्रसार हुआ है। न केवल विद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली औपचारिक शिक्षा सुविधाओं में वृद्धि हुई है अपितु अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा महिलाओं को साक्षर बनाने की दिशा में भी काफी काम पूरा किया गया है। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा पाने वाली लड़कियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है जो बालिकाओं को साक्षर बनाने के प्रति समाज में आई चेतना को प्रतिबिम्बित करती है।

आंकड़ों के अनुसार 1950-51 से लेकर 1990-91 तक देश में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 2,09,671 से बढ़कर 5,58,39 हो गई है। इसी अवधि में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या भी बढ़कर 1991 में 1,46,635 हो गई, जबकि चार दशक पूर्व यह संख्या केवल 13,596 ही थी। इस दौरान प्राथमिक शिक्षा स्कूलों की संख्या जहां ढाई गुनी से अधिक हो गई है, वहीं माध्यमिक शिक्षण संस्थान लगभग ग्यारह गुने हो गए हैं।

इन 40 वर्षों में, देश में औपचारिक शिक्षा के आठ लाख से अधिक संस्थान खुले हैं जिनमें सोलह करोड़ चालीस लाख से अधिक विद्यार्थी पढ़ते हैं। इनके अतिरिक्त करीब तीन लाख ऐसे अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र भी हैं जिनमें 6 से 14 वर्ष तक की आयु के स्कूल न जाने वाले बच्चे पढ़ना-लिखना सीखते हैं। शिशुओं की देखभाल और शिक्षा के लिए लगभग एक लाख केन्द्र अलग हैं। कुल मिलाकर इन संस्थानों और शिक्षा केन्द्रों में 40 प्रतिशत बालिकाएं हैं।

यह तथ्य बहुत उत्साहवर्द्धक है कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा पाने वाली लड़कियों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। 1950-51 में ऐसी लड़कियों की संख्या 54 लाख से बढ़कर 1992-93 में 4 करोड़ 43 लाख हो गई। माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की संख्या 1950-51 में केवल 5 लाख 30 हजार थी जो 1992-93 में बढ़कर एक करोड़ 50 लाख हो गई। इससे आगे की शिक्षा पाने वाली लड़कियों की संख्या भी 1950-51 के

15 लाख से बढ़कर 1992-93 में 2 करोड़ 12 लाख हो गई।

लड़कियां फिर भी पीछे

अधिकांश सार्वजनिक परीक्षाओं में लड़कियां, अपनी बुद्धि व प्रतिभा के बल पर लड़कों से आगे ही रहती हैं, लेकिन जहां तक विद्यार्थियों की कुल संख्या में छात्राओं के प्रतिशत का सवाल है, लड़कियां पिछड़ती जा रही हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता की दर 52.11 प्रतिशत है लेकिन बालिकाएं और महिलाएं इससे बहुत पीछे हैं। साक्षरता की इस राष्ट्रीय दर के मुकाबले पुरुषों में साक्षरता की दर जहां 63.86 प्रतिशत है, वहां महिलाओं में यह दर केवल 39.42 प्रतिशत ही रही है।

भारत में महिला साक्षरता की दर इस शताब्दी के आरंभ में 1901 की जनगणना में 0.60 प्रतिशत से बढ़कर 1981 में 24.88 प्रतिशत हो गई थी, फिर भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता में काफी बड़ा अंतर है जिसे पाटने के प्रयास किए जा रहे हैं।

महिलाओं की साक्षरता का देश के सकल विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उनकी साक्षरता देश की जनसंख्या में वृद्धि की दर, शिशु और बाल मृत्यु दर, विवाह की आयु, जीवन आयु तथा बच्चों के भविष्य से प्रत्यक्ष रूप में जुड़ी है। महिला साक्षरता की दिशा में किए जा रहे प्रयासों को अभी पूर्ण सफलता न मिल पाने के कई कारण हैं। सर्वसुलभ निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य अभी तक प्राप्त न हो सकने का एक बड़ा कारण भी यही है कि लड़कियों, विशेषकर देहाती लड़कियों के लिए, अभी तक स्कूलों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने का वातावरण तैयार नहीं हो पाया है। इसी का परिणाम है कि देश की कुल जनसंख्या में जहां महिलाओं की संख्या पुरुषों से केवल तीन करोड़ कम है, वहां निरक्षर पुरुषों की तुलना में निरक्षर महिलाओं की संख्या सात करोड़ अधिक है।

इसमें भी देहातों में, शहरों की अपेक्षा साक्षर महिलाओं की संख्या आधी से भी कम है जबकि देहातों की कुल आबादी शहरों की अपेक्षा चार गुनी है। चौंकाने वाला तथ्य यह है कि देहातों में शिक्षा और साक्षरता का प्रसार शहरों के मुकाबले बहुत कम है। गांव में अगर पहली कक्षा में 100 लड़कियां है तो पांचवीं कक्षा में 40, आठवीं में 18, दसवीं में 9 और बारहवीं में सिर्फ एक लड़की पढ़ पाती है। इसके विपरीत शहरों में पांचवीं में 82, आठवीं में 62, दसवीं में 32 और बारहवीं में 14 लड़कियां पढ़ती हैं। इस दृष्टि से देहाती लड़कियों को तकनीकी व पेशेगत शिक्षा संस्थानों में प्रवेश का तो अवसर ही नहीं मिल पाता।

इस अंतर का एक कारण यह है कि स्कूलों में प्रवेश लेने के बाद भी लड़कियां पढ़ाई जारी नहीं रख पातीं। घर-परिवार की आर्थिक स्थिति, सामाजिक दृष्टि से लड़के का महत्व और लड़की के प्रति भेदभाव, लड़कियों का जल्दी विवाह अथवा घर के कामकाज में उनकी मदद की जरूरत के अलावा स्कूलों में महिला शिक्षकों की कमी भी लड़कियों द्वारा पढ़ाई छोड़ देने या उनकी पढ़ाई छुड़ा दिए जाने का एक बड़ा कारण है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार गांवों में सहशिक्षा का उतना विरोध नहीं है जितना महिला शिक्षक की कमी पर आपत्ति होती है। गांवों के स्कूलों में अधिकतर एक ही अध्यापक होता है और सामान्यतया वह पुरुष ही होता है। वैसे भी, कुल मिलाकर महिला शिक्षकों का प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों में 29.47, माध्यमिक स्तर पर 33, उच्च विद्यालयों में 34 तथा उच्चतर विद्यालयों में 31 ही पाया गया है।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत "आपरेशन ब्लैक बोर्ड" कार्यक्रम में एक शिक्षक वाले हर स्कूल में एक अतिरिक्त शिक्षक नियुक्त किया जा रहा है और यह प्रयास है कि इन दो में से एक महिला शिक्षक हो। कई राज्य उत्साहपूर्वक इस कार्यक्रम को लागू कर रहे हैं। जिन राज्यों में महिला शिक्षकों की ज्यादा कमी थी, उनमें प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों के अधिकांश पद केवल महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिए गए हैं और उन्हें प्रशिक्षण दिया गया है। राजस्थान और उड़ीसा ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किए हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की कार्ययोजना के अंतर्गत अब शिक्षकों व उनके प्रशिक्षण संस्थानों में आधे पद महिलाओं को ही दिए जाते हैं।

प्रोत्साहन योजनाएं

अधिक संख्या में महिलाओं को साक्षर बनाने और बालिकाओं को स्कूलों में पढ़ाई जारी रखने के लिए कई प्रोत्साहन योजनाएं भी शुरू की गई हैं। इनमें स्कूलों में दोपहर का भोजन देने, निःशुल्क वर्दी और पाठ्य पुस्तकें देने, स्कूलों में अधिक उपस्थिति पर लड़कियों को छात्रवृत्ति देने के अलावा अनुसूचित जाति व

। कुल मिलाकर 41 प्रतिशत छात्राएं दोपहर के भोजन की योजना
, 50 प्रतिशत निःशुल्क वर्दी का तथा 41 प्रतिशत लड़कियां
:शुल्क पाठ्य पुस्तक योजना का लाभ उठा रही हैं।

इस शताब्दी के अंत तक सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित
किया गया है। लेकिन यह भी स्वीकार किया है कि यह काम केवल
रकारी प्रयासों से पूरा नहीं हो सकता। इसलिए स्वयंसेवी
स्थाओं को राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में भागीदार बनाया गया है
ौर उन्हें सरकार की ओर से शत-प्रतिशत वित्तीय सहायता देने
ा प्रावधान किया गया है। दूसरी ओर प्रौढ़ शिक्षा, महिला
क्षरता व राष्ट्रीय साक्षरता मिशन जैसे अनौपचारिक शिक्षा
ार्यक्रमों को बढ़ावा देने का प्रयास चल रहा है। देश के कई राज्यों
एक निर्धारित अवधि तक पूर्ण साक्षरता प्राप्त करने का लक्ष्य
खा गया है। देश के 275 जिलों में पूर्ण साक्षरता अभियान चलाए
ा रहे हैं और 42 जिलों में शिक्षा संबंधी क्षमताओं के विकास
लिए जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किए गए हैं।

धन, वस्तुतः देश में मानव संसाधनों के विकास के लिए किया
जा रहा पूंजी निवेश है। 1950-51 से 1984 तक शिक्षा पर होने
वाले सम्पूर्ण व्यय का 68 से 89 प्रतिशत तक भार सरकार ने वहन
किया था। सातवीं योजना के दौरान भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद
का 3.5 प्रतिशत शिक्षा पर ही व्यय किया गया है। नौवीं पंचवर्षीय
योजना की अवधि में शिक्षा पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद का
6 प्रतिशत तक शिक्षा के लिए रखा जाएगा।

साक्षरता का अर्थ केवल ज्ञान प्राप्त कर लेना ही नहीं है।
साक्षरता व्यक्ति में एक नई चेतना जगाती है। उसे अपने पर्यावरण
तथा अधिकारों और दायित्वों के प्रति अधिक सचेत बनाने तथा
उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक बनती है। महिलाओं में
साक्षरता का प्रसार न केवल हमारे सामाजिक ढांचे को अधिक
सशक्त और आर्थिक विकास को अधिक सम्पन्न बनाएगा, अपितु
साक्षरता देश की आत्मा, प्रतिभा और कुशलता के विकास का
साधन सिद्ध होगी।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

पृष्ठ 9 का शेष)

धुमक्खी पालिए...

ा ठंडक पहुंचा सकते हैं। छत्तों को बिना हानि पहुंचाए शहद
निकाला जाता है जिससे मक्खियों का अमूल्य समय और परिश्रम
बारा छत्ता बनाने में बेकार नहीं जाता है। भारतवर्ष में चार प्रकार
की मधुमक्खियां पाई जाती हैं वे हैं सारंग, खैरा, इंडिका और
मेलिफेरा। वर्तमान समय में मेलिफेरा का पालन अधिकांश लोग
कर रहे हैं। यह मधुमक्खी बड़ी मेहनती और शांत स्वभाव की
होती है। यह डंक बहुत कम मारती है और रानी ज्यादा अंडे देती
है। छत्तों के विशेष शत्रु कीड़ों को यह खोज-खोज कर मारती है।
मधुमक्खियों के प्रत्येक परिवार में तीन प्रकार की मक्खियां होती
हैं। रानी, जो अंडे देती है, कमेरी-जो शहद एकत्र करती है,
नर-जिसके द्वारा रानी गर्भित होती है। नर सबसे निकम्मा प्राणी
होता है जिसे कमेरी मक्खियां मार डालती हैं। कमेरी मक्खियों
को उनके काम के अनुसार दो भागों में बांटा जा सकता है (क)
घर में काम करने वाली। (ख) घर से बाहर काम करने वाली।
बाहर काम करने वाली मक्खियां छत्तों के अन्दर कोई काम नहीं
करती। वह सिर्फ शहद एकत्र करती है। घर में काम करने वाली
मक्खियों का काम अंडे से निकले ढोलों को खिलाना, छत्ता बनाना
और छत्ते की सफाई करना है। कुछ मक्खियां दरवाजों पर पहरा
देती हैं। सभी मक्खियां अपना-अपना कार्य अच्छी तरह करती
हैं।

भारत में हजारों साल पूर्व भी शहद की जानकारी लोगों को
थी। तब भी इसका औषधीय इस्तेमाल होता था। तब
मधुमक्खियों को सिर्फ जंगली जीव माना जाता था। सबसे पहले
सन् 1789 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक श्री ह्यूबर ने चल-चौखट युक्त
मधुमक्खी घर बनाया। धीरे-धीरे संसार भर में मधुमक्खी पालन
व्यवसाय का रूप लेता गया। भारत में सबसे पहले 1920 में पंजाब
सरकार की प्रेरणा से मधुमक्खी पालन शुरू हुआ जबकि कुछ
नौजवानों ने मधुवाटिकाएं खोलीं। आज देश में लाखों लोग इस
व्यवसाय से अपना रोजगार चला रहे हैं। आप भी अपने घरों, खेतों,
खलिहानों, बाग-बगीचों में मधुमक्खियों का पालन कर आर्थिक
लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

के-100, लक्ष्मी नगर,
दिल्ली-110092

ग्रामीण युवा स्वरोजगार कार्यक्रम

पूनम शर्मा

ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण (ट्रेनिंग आफ रूरल यूथ फॉर सेल्फ एम्पलोयमेंट–ट्राइसेम) समन्वित ग्रामीण कार्यक्रम का एक अंग है जिसका प्रारम्भ एक केन्द्रीय प्रायोजित योजना के रूप में 15 अगस्त 1979 को किया गया था। इस कार्यक्रम का लक्ष्य उन ग्रामीण युवाओं को तकनीकी और उद्यमशीलता की कुशलताएं प्रदान करना है, जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाले परिवारों से हैं।

ट्राइसेम की प्रमुख विशेषताएं

- गांवों में 18-35 आयु वर्ग के उन युवाओं को तकनीकी कौशल प्रदान करना जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाले परिवारों से हैं। इससे वे अपना काम-धन्धा प्रारम्भ कर सकते हैं या किसी दूसरे आर्थिक क्षेत्र में नौकरी पा सकते हैं।

- यह प्रशिक्षण औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, कृषि विज्ञान केन्द्रों, नेहरू युवक केन्द्रों, राज्य ग्रामीण विकास संस्थान, खादी ग्रामोद्योग बोर्डों, विस्तार केन्द्रों तथा स्वयंसेवी एजेन्सियों द्वारा संचालित संस्थानों में उस्ताद कारीगरों द्वारा दिया जाता है।

- प्रशिक्षण की अवधि घटाई-बढ़ाई जा सकती है। छह माह तक के पाठ्यक्रमों के बारे में ग्राम-स्तर पर तथा इससे अधिक के पाठ्यक्रमों के बारे में जिला या राज्य स्तर पर निर्णय लिया जाता है।

- ग्रामीण युवा स्वरोजगार योजना में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का संभावित लाभार्थी होता है। इस कार्यक्रम में ग्रामीण कार्यक्रम के तहत वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

- प्रशिक्षित किये जाने वाले ग्रामीण युवाओं में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के युवाओं की संख्या कम से कम 50 प्रतिशत होनी चाहिए।

- प्रशिक्षित किये जाने वाले ग्रामीण युवाओं में महिलाओं की संख्या कम से कम 40 प्रतिशत होनी चाहिए।

- ट्राइसेम प्रशिक्षण के पश्चात् स्वरोजगार अथवा नौकरी करने में समर्थ शारीरिक रूप से विकलांगों के लिए कम से कम तीन प्रतिशत लाभ निर्धारित होना चाहिए।

- देहाती क्षेत्रों में स्थित अनाथालयों के निवासियों के सम्बन्ध में न्यूनतम आयु सीमा में छूट।

- विधवाओं, मुक्त बंधुआ मजदूरों, सजा से छूटकर आये अपराधियों, बड़ी विकास योजनाओं से विस्थापित व्यक्तियों और कुष्ठ रोग से ठीक हुए व्यक्तियों के मामले में अधिकतम आयु सीमा में छूट।

प्रशिक्षण के अन्तर्गत वित्तीय सहायता

1. प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाती है।
2. प्रशिक्षार्थियों को उपयुक्त औजार किट मुफ्त दिया जाता है।
3. प्रशिक्षण संस्थाओं/उस्ताद कारीगरों को मानदेय दिया जाता है।
4. कच्चे माल की खरीद के लिए भुगतान किया जाता है।
5. प्रशिक्षण के ढांचे को विस्तृत करने के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं को वित्तीय सहायता दी जाती है।
6. प्रशिक्षणार्थियों को छात्रवृत्ति, प्रशिक्षकों को मानदेय तथा कच्चे माल की दरें एक अप्रैल 1991 से बढ़ा दी गई हैं।

(शेष पृष्ठ 20 पर)

आठवीं योजना में खाद्य प्रशोधन उद्योग

डा. हरे कृष्ण सिंह

भारतीय अर्थ व्यवस्था में कृषि आधारित खाद्य प्रशोधन उद्योग का इतिहास नया नहीं हैं लेकिन इसका आधुनिक स्वरूप विज्ञान की देन है। वास्तव में पहले खाद्य पदार्थों को संसाधित करने वाली प्रथा व्यापक, विस्तृत या वैज्ञानिक नहीं थी। लेकिन कई ऐसे बेनाम उद्योग प्रचलित थे। आज भी भारत के साथ-साथ विश्व के अनेक देशों में सूर्य की रोशनी में खाद्य उत्पादों को सुखाकर लम्बे समय तक सही तथा पौष्टिक हालत में रखने की प्रथा प्रचलित है। पारम्परिक खाद्य पदार्थों के संसाधन के तरीकों जैसे सुखाई, पिसाई, कुटाई, पिराई आदि ग्रामीण भारत में सहज ही मिल जाते हैं। इन विधियों को आज के युग में वैज्ञानिक नहीं माना जा रहा है और नये ढंग से आविष्कृत कार्यों को उद्योग का दर्जा दिया जाने लगा है। यही कारण है कि भारत सरकार ने 1988 में खाद्य प्रसंस्करण के लिए एक पृथक मंत्रालय का गठन किया। दूसरे सम्पूर्ण देश में लघु उद्योग सेवा संस्थान ने खाद्य प्रसंस्करण उद्यमिता पाठ्यक्रम को चलाना प्रारम्भ कर दिया है। कई राज्यों, सहकारी संस्थाओं और स्वयंसेवी संगठनों ने भी इस दिशा में पहल शुरू कर दी है। ये सब गतिविधियां खाद्य प्रशोधन उद्योग की भावी सम्भावनाओं की ओर संकेत हैं। फिर भी इनका वास्तविक परिचय, आवश्यकता, विकास के प्रयासों, उपलब्धियों जैसे मुद्दों को जानना प्रासंगिक हो जाता है।

आशय

खाद्य प्रशोधन उद्योग भारतीय गांवों में प्रचलित ग्रामोद्योग का एक विकसित स्वरूप है। इसके तहत कृषि से उत्पन्न खाद्य पदार्थों यथा खाद्यान्न, फलों और सब्जियों के रूप और गुण में परिवर्तन करके इनकी उपयोगिता में वृद्धि की जाती है। यह छोटी सी जगह पर, कम पूंजी, कुशल-अकुशल श्रम के सहयोग और न्यूनतम प्रौद्योगिकी की सहायता से गतिमान उद्योग है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे उद्योगों के लिए कच्चा माल मुहैया कराने के केन्द्र हमारे गांव हैं। ऐसे उद्योगों में निर्मित सामग्री को गिनाना एक कठिन काम है तथापि कुछ उत्पादों का नाम खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को समझने के लिए आवश्यक है। इन उत्पादों में प्रमुख हैं : जैली, मुरब्बा, अचार, जूस, आलू चिप्स, पापड़, केक, फलों की डिब्बाबंदी, सब्जियों की डिब्बाबंदी, चटनी, टमाटर सास और हरे मटरों का डीहाइड्रेशन आदि। वास्तव में विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियों से खाद्यान्न, फलों और सब्जियों को प्रसंस्कारित करके नया रूप देना खाद्य प्रशोधन क्रिया है और इस क्रिया में लगे मानव, माल और मशीन के समूह को खाद्य प्रशोधन उद्योग कहा जाता है। यह उद्योग केवल कृषि उपज पर आधारित है। अतः इसे कृषि आधारित खाद्य प्रशोधन उद्योग कहना उचित होगा।

महत्ता

सोने की चिड़िया नाम से जाना-जाने वाला हमारा देश गरीबी और बेरोजगारी के नाम से भी वाकिफ नहीं था। खासकर हमारे गांववासी गांवों में ही स्वर्ग का अनुभव करते थे। लेकिन बदलते समय में हमारा कृषि प्रधान ग्राम जनसंख्या के बोझ से दब गया है और ग्रामवासी गरीबी और बेरोजगारी नामक लाइलाज बीमारियों की चपेट में आ गए हैं। इस रोग से मुक्ति पाने के लिए कृषि विकास के साथ-साथ अनेकानेक प्रभावपूर्ण कार्यक्रम चलाए गए। इससे राहत मिली लेकिन हर हाथ को काम नहीं मिल सका है। इसके लिए राष्ट्रीय पूंजी का अभाव है और सभी को सरकारी नौकरी मुहैया नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में भारतीय अतीत को याद करने की आवश्यकता जान पड़ती है। जिस समय हर परिवार अपनी जरूरत की चीजों को अपने से पूरा करने का प्रयास करता था। आज हमने आटा-पिसाई, तेल पिराई, चावल कुटाई और फलों तथा सब्जियों को सुखाने की व्यवस्था को भी बड़ी-बड़ी मिलों और विदेशी कम्पनियों के जिम्मे सौंप दिया है। यह पराश्रिता हमें गरीबी, बेरोजगारी और गुलामी की ओर ले जा रही है। इसका उपचार खाद्य प्रशोधन उद्योग में जान पड़ता है क्योंकि एक ओर इनकी स्थापना कम से कम पूंजी, श्रम और मशीन से हो सकती है दूसरी ओर इसके उत्पादों का बाजार भी काफी व्यापक है। इसके अलावा इस उद्योग के कई लाभ हैं, जिनमें प्रमुख हैं: अकुशल और कुशल श्रमिकों के रोजगार के अवसरों में वृद्धि, कृषि कार्य में लगे किसानों और मजदूरों का उचित पुरस्कार, मौसम परिवर्तन के कारण बेकार होने वाले

खाद्यान्न, फलों और सब्जियों का सदुपयोग, महिलाओं को फुर्सत के समय में काम करने का मौका, प्रदूषण और शोषण से बचाव, विदेशी मुद्रा का अर्जन और स्वदेशी की भावना का विकास।

विकास के प्रयास

रोजगार की प्रबल सम्भाव्यता ने सरकार का ध्यान इस ओर केन्द्रित किया है। इसीलिए केन्द्रीय सरकार के अधीन 1988 में गठित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय ने किसानों को बागवानी फसलों और इनके उत्पादों का लाभकारी मूल्य दिलाने हेतु फल तथा सब्जी प्रशोधन उद्योगों की स्थापना और विस्तार हेतु राज्य सरकारों के उपक्रमों और सहकारी समितियां को सामान्य जिलों में कुल लागत का 50 प्रतिशत और औद्योगिक रूप से पिछड़े जिलों को 75 प्रतिशत सहायता देना शुरू किया है। दूसरी ओर कृषि मंत्रालय के नियंत्रण में राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों के हितार्थ कृषि उपज पर आधारित तथा निर्यातोन्मुख इकाइयों के विकास और विस्तार के लिए 50 से 95 प्रतिशत सहायता प्रदान करता है। यह सहायता सामान्य राज्यों में 50-65 प्रतिशत, सहकारिता की दृष्टि से अल्प विकसित क्षेत्रों में 75 प्रतिशत तथा अति अल्प विकसित राज्यों में 95 प्रतिशत दी जाती है। इसके अलावा खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों, खासकर चावल मिलों को आधुनिकतम बनाने हेतु भूसा अलग करने वाली इकाइयों के आधुनिकीकरण के लिए दस हजार रुपये प्रति इकाई सब्सिडी देने की भी व्यवस्था की गई है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिए फार्म के बाद के क्रियाकलाप जैसे फसल उठाने, परिवहन, कोल्ड स्टोरेज, प्रसंस्करण, विपणन इत्यादि के सुदृढ़ीकरण के लिए अमरीका के ए. सी. ई. कोप से भी लाभ उठाया जा सकता है जिसका संचालन, प्रबंधन और प्रशासन इण्डस्ट्रियल क्रेडिट एण्ड इन्वेस्टमेंट कारपोरेशन आफ इण्डिया करती है। विकास के प्रयास की अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण कड़ी लघु उद्योग सेवा संस्थान है जो देश के विभिन्न स्थानों पर खाद्य प्रसंस्करण सम्बन्धी उद्यमिता पाठ्यक्रम चला रहा है। इस कार्यक्रम के तहत थ्योरी तथा प्रेक्टीकल कक्षाएं ली जाती हैं और प्रशिक्षणार्थियों को अनेकानेक खाद्य सामग्री बनाने की विधि एवं फार्मूले सिखाए जाते हैं। पाठ्यक्रम के अंतिम चरण में प्रशिक्षणार्थियों को सिखाई गई सामग्री को तैयार करने का भी अवसर दिया जाता है।

उपलब्धि

श्रम कभी भी व्यर्थ नहीं जाता है। हमारी मेहनत साकार हो गई। इन उद्योगों के प्रोत्साहन से एक ओर हमने आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता को प्राप्त किया तो दूसरी ओर बेकारी एवं गरीबी जैसी समस्याओं से निपटने के लिए रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी हुई है। किसानों और मजदूरों को भी अपने श्रम का उचित पुरस्कार मिलने की गारंटी लगने लगी है। हमारे राष्ट्र को विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होने लगी है। विश्व बाजार में इस प्रकार के भारतीय खाद्य उत्पादों के अधिक प्रतियोगी होने की सम्भावना जगी है। अतः आठवीं पंचवर्षीय योजना में खाद्य प्रशोधन उद्योगों की स्थापना और विस्तार के लिए सहायता करने की अनेकानेक योजनाएं बनायी गई हैं।

आठवीं योजना

प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों की राष्ट्रीय आवश्यकता, महत्ता के साथ-साथ विदेशी मांग और निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा जैसे लाभ को ध्यान में रखते हुए आठवीं योजनाकाल में ऐसे उद्योगों की स्थापना, विकास और विस्तार के लिए कई ठोस कदम उठाये गये हैं और जिनमें प्रमुख निम्न है :

* खाद्य प्रसंस्करणों सम्बन्धी शोध और विकास की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु खाद्य अभियांत्रिकी केन्द्र की स्थापना।

* खाद्य शोधन के सभी क्षेत्रों यथा उत्पादन, विपणन, गुणवत्ता नियंत्रण और प्रबंधन का प्रशिक्षण देने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 200 से अधिक खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण केन्द्र खोलने की योजना।

* नई उद्योग नीति के तहत खाद्य प्रशोधन उद्योगों को 51 प्रतिशत तक विदेशी सहयोग की स्वतः मंजूरी की प्राथमिकता।

* ग्रामीण निर्धनों की पोषण आवश्यकता की पूर्ति हेतु अनाज और खाद्यान्नों के प्रसंस्करण के साथ-साथ पारम्परिक भारतीय खाद्य उत्पादों तथा सोयाबीन उत्पादों को बढ़ावा देने हेतु विशिष्ट शोध और विकास योजनाएं बनाना।

इसके अतिरिक्त बियर और एल्कोहल को छोड़कर खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को लाइसेंस मुक्त करना, ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित पत्थर की चक्कियों के स्थान पर केन्द्रीय खाद्यान्न प्रशिक्षण अनुसंधान संस्थान, मैसूर द्वारा विकसित लघु खाद्यान्न मिलों की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता तथा सहकारी एवं स्वयंसेवी संगठनों को खाद्य प्रशोधन उद्योग की स्थापना हेतु सहायता की योजना आदि को भी आठवीं योजना में शामिल किया गया है।

आज आवश्यकता है कृषि आधारित खाद्य प्रशोधन उद्योग की घर-घर पहुंचाने की जो आय की दृष्टि से नहीं वरन् रोजगार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस कार्य के लिए सूचना और प्रसारण मंत्रालय, कृषि मंत्रालय, उद्योग मंत्रालय और खाद्य प्रसंस्करण के लिए गठित मंत्रालय के समन्वय के साथ-साथ महिला विकास निगम, खादी और ग्रामोद्योग आयोग, स्वदेशी जागरण मंच तथा नेहरू युवा केन्द्र जैसे संगठनों का सहयोग अपेक्षित है। सहयोग के रूप में खाद्य प्रशोधन उद्योगों से संबंधित प्रकाशित सामग्री का निःशुल्क वितरण होना चाहिए जिससे इस जानकारी से ग्रामीण भारत के निवासी लाभ उठा सकें।

सदस्य, वाणिज्य संकाय
एम. एल. एस. एम. कालेज
दरभंगा-846004

(पृष्ठ 17 का शेष)

ग्रामीण युवा स्वरोजगार...

ट्राइसेम के अन्तर्गत उपलब्धियां

अवधि	प्रशिक्षित युवा (संख्या लाख में)
छठी योजना	10.15
सातवीं योजना	9.98
1990-91	2.36
1991-92	3.07
1992-93	2.76
1993-94	3.50 (लक्ष्य)

कुछ समस्यायें

1. ग्रामीण युवा स्वरोजगार कार्यक्रम के प्रशिक्षार्थियों की समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के साथ तालमेल की कमी।
2. स्वरोजगार के उद्यमों के लिए फारवर्ड और बैकवर्ड लिंकेज का अभाव।

निष्कर्ष

ग्रामीण युवाओं के लिए बेरोजगारी तथा गरीबी की समस्या का अंतिम समाधान आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उत्पादक रोजगारों के प्रशिक्षण से होगा जिससे वे कमाई करने वाले काम शुरू कर सकें।

14, न्यू राजामण्डी कालोनी
आगरा-282 002 (उ.प्र.)

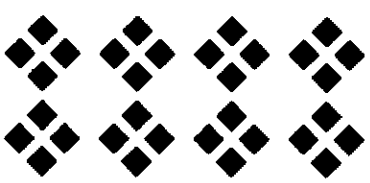

दूध में रसायनों की मिलावट स्वास्थ्य के लिए घातक

डा० राकेश अग्रवाल

यों तो किसी भी खाद्य पदार्थ में मिलावट करना मनुष्य की निकृष्टता का द्योतक है किन्तु दूध में अखाद्य रसायनों की मिलावट करना तो जघन्य कृत्य के समान है।

स्वास्थ्य-विज्ञान में दूध को स्वास्थ्यवर्द्धक माना गया है। इसीलिए दूध पौष्टिक आहार का महत्वपूर्ण अंग है। इसमें समुचित मात्रा में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, कैलशियम और फास्फोरस आदि पोषक तत्व विद्यमान होते हैं। कुछ स्वास्थ्य विशेषज्ञ दूध को पूर्ण आहार मानते हैं क्योंकि इससे पर्याप्त कैलोरी (ऊर्जा) प्राप्त होती है।

एक समय था, जब दूध का विक्रय करना पाप समझा जाता था किन्तु आज के आर्थिक युग में धन की लालसा ने नाना प्रकार की मिलावट करके दूध बेचने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है जिस कारण स्वास्थ्यवर्द्धक दूध स्वास्थ्य घातक सिद्ध हो रहा है। विशेष रूप से रसायनों की मिलावट से युक्त दूध शिशुओं के स्वास्थ्य को अधिक प्रभावित कर रहा है। आज आधुनिकता से प्रभावित मां अपने शिशुओं को स्तनपान कराने में संकोच करती हैं। परिणामस्वरूप उन्हें बाहरी दूध पर निर्भर रहना पड़ता है। बाहरी दूध में प्रयुक्त रसायन शिशुओं के कोमल अंगों को जल्दी ग्रसित करते हैं। रसायनों की मिलावट वाला दूध वयस्कों में भी विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न कर देता है।

महंगा दूध प्रायः गरीब निर्बलों की पहुंच से बाहर होता है। यदि किसी डाक्टर के परामर्श से निर्धन लोग अपने बच्चों के लिए अपना पेट काटकर दूध की व्यवस्था करते भी हैं तो वे अच्छी-खासी कीमत देकर भी मिलावटयुक्त दूध पाते हैं। आज बाजार की यही नियति बन गयी है। उपभोक्ता पैसा देकर भी जो खरीदना चाहता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। अर्थ की दौड़ में लोग संवेदनाहीन हो गए हैं, तभी तो मिलावट जैसा जघन्य अपराध करते हैं। सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र तेजी से लुप्त होता जा रहा है।

"दूध में कैसी महक आ रही है, पिया ही नहीं जाता।" यह आवाज आज हर उस दूध पीने वाले के मुंह से निकलती हुई सुनाई देती है जो सामने निकाला दूध हुआ नहीं खरीदते हैं। इस महक का मुख्य कारण है दूध में रसायनों आदि की मिलावट। जैसे-जैसे दूध के दाम बढ़ रहे हैं, अधिक धन कमाने के लालच में मिलावट का धंधा बढ़ता जा रहा है। आज नगरों में ही नहीं गांवों में भी दूध में रासायनिक पदार्थों को मिलाया जा रहा है। इन हानिकारक रसायनों से अनेक रोगों का जन्म होता है। उपभोक्ता स्वास्थ्य की चाह में दूध का सेवन करते हुए बीमारियां गले बांध लेते हैं।

कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में दूध में जोहड़ का पानी मिलाया जाता है। जोहड़ का पानी स्वास्थ्य की दृष्टि से घातक होता है। इससे संक्रामक रोग फैलने की सम्भावना रहती है। दूध को अधिक समय तक संरक्षित रखने के लिए यूरिया, कास्टिक, रीठा पाउडर, कैस्टर आयल, पैराफिन आदि रसायनों का प्रयोग किया जाता है। यह दूध काफी समय तक नहीं फटता है। छेना मिठाई बनाने वाले हलवाई भी इस दूध को फाड़ने में कठिनाई अनुभव करते हैं। दूध में रसायनों के प्रयोग से उपभोक्ताओं को दस्त, पेचिश आदि रोग लग जाते हैं। लगातार ऐसा दूध प्रयोग करने से आंतों में जख्म होने का खतरा पैदा हो जाता है।

आर्थिक दौड़ में मनुष्य ने सभी मानवीय मूल्यों को तिलांजलि दे दी है। गाय-भैंस के बछड़ों को लगाए बिना शीघ्र दूध उतारने के लिए उन्हें दवाओं का इंजेक्शन लगाया जाता है। इंजेक्शन लगने से पशुओं में हारमोन तुरन्त क्रियाशील हो जाते हैं और थनों में दूध शीघ्र उतर आता है। किन्तु इस प्रकार आने वाला दूध स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक होता है। स्वास्थ्य विशेषज्ञों का मानना है कि नियमित इंजेक्शन लगते रहने से दूध में पशुओं के खून और हड्डियों के तत्व आने लगते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए घातक होते हैं। चिकित्सकों का यहां तक कहना है कि इंजेक्शनों से निकाला गया दूध गर्भवती महिलाओं के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। इससे गर्भपात की सम्भावनाएं अधिक रहती हैं तथा होने वाले बच्चे के मानसिक व शारीरिक दृष्टि से विकलांग होने की आशंका रहती है। शुद्ध पानी की मिलावट या बसा निकले दूध से तो उपभोक्ताओं को केवल आर्थिक नुकसान होता है किन्तु

ावना की मिलावट से तो उपभोक्ताओं को आर्थिक हानि के थ शारीरिक व मानसिक हानि भी उठानी पड़ती है। स्वार्थ ने नुष्य को अन्धा कर दिया है। वह अपने थोड़े से लालच में भावी ढ़ियों को नष्ट कर रहा है।

आर्थिक दौड़ में दूध में ही मिलावट का अन्त नहीं होता है ल्कि दुग्ध-उत्पादों जैसे मक्खन, दही, घी, खोया, दुग्ध पाउडर ादि में भी मिलावट की जाती है। खोये से वसा निकालकर स्टार्च ी मात्रा बढ़ा दी जाती है। मिल्क पाउडर में भी स्टार्च की मिलावट ी जाती है। ये मिलावटयुक्त दुग्ध उत्पादन पेट के अनेक रोगों ा कारण बनते हैं।

दूध की नदियों वाले देश में आज दुग्ध कलुषित हो गया है। लावट की यही गति चलती रही तो बाजार के दूध से उपभोक्ताओं का विश्वास उठ जाएगा। दूध स्वास्थ्य के स्थान पर रोग का सूचक बन जाएगा। अब उपभोक्ताओं को शुद्ध दूध प्राप्त करने के लिए पशुपालन पर ध्यान देना होगा। तभी रोगों से मुक्त होकर स्वास्थ्य की अभिवृद्धि हो सकती है। मिलावट करने वाले दूध उत्पादकों और व्यापारियों को भी नैतिक आधार पर यह विचार करना चाहिए कि यदि एक जगह दूध में मिलावट करेंगे तो दस जगह उन्हें भी मिलावटी पदार्थ मिलेंगे और यह सिलसिला चलता रहेगा। स्वास्थ्य अधिकारियों को दूध के परीक्षण आदि पर अधिक ध्यान देकर मिलावट पर रोक लगानी चाहिए। दूध अपमिश्रण कानून को भी अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। उपभोक्ता संगठन भी दूध में मिलावट रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

"हिमदीप", राधापुरी,
हापुड़-245101 (उ०प्र०)

परती भूमि विकास की चौबीस लाख रुपये की परियोजना का शुभारंभ

ग्रामीण विकास राज्य मंत्री कर्नल राव राम सिंह ने परती भूमि के सघन विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों में ग्रामीण लोगों से सक्रिय योगदान देने की अपील की है। उन्होंने गुड़गांव जिले में मानेसर में 24 लाख रुपये की लागत से एक परती भूमि विकास परियोजना का उद्घाटन करते हुए कहा कि प्रधानमंत्री ने एक पृथक परती भूमि विभाग का गठन किया है ताकि गांवों में बंजर जमीनों को उर्वर बनाया जा सके और योजनाबद्ध ढंग से उनका विकास किया जा सके।

गुड़गांव जिले में अरावली पर्वत श्रेणियों में 30 हेक्टेयर के क्षेत्र में यह भूमि फैली हुई है। यह क्षेत्र एकदम बंजर है और यहां किसी भी प्रकार की हरियाली नहीं है। राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड ने इस परियोजना के लिए 24 लाख 30 हजार रुपये स्वीकृत किए हैं। इस स्थान के आस-पास स्थित मुख्य गांव हैं–नैनवाल, मानेसर, बाघन्की, बिसर, अकबरपुर और पंचगांव। इस परियोजना के तीन वर्षों के भीतर पूर्ण हो जाने की आशा है। इस क्षेत्र में मुख्यतः बबूल और छोटी झाड़ियां उगाई जाएंगी जो आसपास बसे गांवों की ईंधन और चारे की मांग को पूरा करेंगी।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

उत्तर प्रदेश में

कृषि-विकास से ग्रामोत्थान की ओर बढ़ते कदम

डा. उमेश चन्द्र

भारत में वर्तमान में गांवों की संख्या 5,57,137 है जिसमें देश की 74.28 प्रतिशत अर्थात 66 करोड़ जनसंख्या निवास करती है। सम्पूर्ण जनसंख्या के अतिरिक्त गांवों की संख्या और उनमें निवास करने वाले ग्रामीणों की संख्या के आधार पर भी उत्तर प्रदेश भारत का अग्रणी प्रदेश है जहां कुल गांवों की संख्या 1,12,566 और गांववासियों की संख्या लगभग 11 करोड़ है। सामान्य रूप से सम्पूर्ण भारत और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में इस ग्रामीण जनसंख्या का अधिकांश भाग अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि कार्यों में संलग्न है। लेकिन देश और प्रदेश की कुल आय में कृषि का हिस्सा आधे से भी कम है। इसका ग्राम विकास पर असर पड़ा है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि, कृषि जोतों के लगातार विखण्डन, नगरीकरण और औद्योगीकरण के लिए भूमि की लगातार बढ़ती मांग, अनार्थिक कृषि जोत तथा फसलों की निम्न उत्पादकता और साथ ही कृषि की मानसून पर निर्भरता जैसी समस्याओं के होते हुए भी सरकारी, गैर सरकारी तथा व्यक्तिगत प्रयासों से खाद्यान्न उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

उत्तर प्रदेश में खाद्यान्न का उत्पादन 1980-81 में लगभग 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर था वह बढ़कर अब लगभग 18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर से भी अधिक हो गया है। राज्य में आठवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि के क्षेत्र में 4.4 प्रतिशत की वृद्धि दर निर्धारित की गई है यद्यपि सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था के लिए यह दर 6 प्रतिशत निर्धारित है। आठवीं योजना में कृषि विकास के लिए कुल योजना राशि का 16.7 प्रतिशत और सिंचाई के लिए 15.4 प्रतिशत निर्धारित किया गया है। कृषि के क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि हेतु आठवीं योजना में दो प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं जिनमें पहला है कृषि उत्पादन में इतनी वृद्धि के लिए प्रयास करना कि इस अवधि में होने वाली जनसंख्या वृद्धि के हिसाब से प्रति व्यक्ति कृषि उत्पाद की उपलब्धता में कमी न आए और दूसरा है कि भूमि संसाधन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का दोहन इस प्रकार किया जाए जिससे कि पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखा जा सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नांकित कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर पूर्ण करने का प्रयास किया जा रहा है :—

1. ऊसर और अनुत्पादक क्षेत्रों को सुधार कर उन्हें फसल उत्पादन के योग्य बनाना।
2. विभिन्न फसलों में उचित तकनीक और संसाधनों के सूझ-बूझ के साथ उपयोग से उनकी उत्पादकता में वृद्धि करना।
3. विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों के लिए सही फसल के चयन और सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था द्वारा फसलों की गहनता में वृद्धि करना।
4. कृषकों को उत्पादन की आधुनिक विधियों की जानकारी देना जिससे कि वह अपने खेतों से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकें।
5. आधुनिकतम तकनीकों के प्रयोग, अधिक नकदी और क्षेत्र विशेष के लिए उपयोगी फसलों का उत्पादन कर कृषि को आर्थिक रूप से उपयोगी बनाना।
6. कृषि कार्य नियोजन और प्रबन्धन की आधुनिकतम तकनीक अपनाकर उत्पादन में वृद्धि करना।
7. कृषि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित तकनीक को कृषकों के लिए शीघ्र से शीघ्र हस्तांतरित कर कृषकों को अधिकतम लाभ प्राप्त कराना।

उक्त सभी प्रयासों से निश्चित ही राज्य की कृषि व्यवस्था में सुधार होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही कृषि में सुधार हेतु अनेकानेक प्रयत्न किए गये हैं। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्रदेश में जहां एक ओर कृषि विकास हेतु अधिकाधिक धनराशि

की कार्यनीति अपनाए जाने पर भी जोर दिया जाता रहा है। कृषकों को उनकी उपज का समुचित मूल्य दिलाने के लिए मूल्य निर्धारक और सरकारी खरीद की व्यवस्था भी की गई है। इन सभी प्रयासों का परिणाम यह हुआ है कि जहां प्रदेश में कुल खाद्यान्न का उत्पादन वर्ष 1984-85 में दो करोड़ 50 लाख टन था वह अब 3 करोड़ 50 लाख टन से भी अधिक हो गया है। सरकार द्वारा अगले पांच वर्षों में गहन कृषि योजना के माध्यम से कृषि उत्पादन दुगुना करने के लिए सभी आवश्यक उपाय किए जा रहे हैं।

प्रदेश में कृषि के विकास हेतु एक ओर जहां विभिन्न सुविधाओं और सुधारों का योगदान प्राप्त हुआ वहीं कृषि शिक्षा और अनुसंधान व्यवस्था ने इसे निश्चित गति प्रदान की है। इसके अन्तर्गत प्रदेश में कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई है। देश का प्रथम कृषि विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश में 1960 में पंतनगर में स्थापित हुआ। यह गोविन्द वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः यह प्रदेश के लिए गौरव की बात है कि देश के इस अग्रणी विश्वविद्यालय ने भारत में हरित क्रांति का प्रादुर्भाव किया और गेहूं, चावल आदि फसलों के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि कर दिखाई। पंतनगर विश्वविद्यालय के बाद देश में कई कृषि विश्वविद्यालय स्थापित हुए। भारत के विभिन्न राज्यों में स्थापित इन कृषि विश्वविद्यालयों की संख्या इस समय 26 है जिसमें से तीन अकेले उत्तर प्रदेश राज्य में हैं। पंतनगर के अतिरिक्त एक चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय फैजाबाद में है। इसी वर्ष 1994-95 में प्रदेश में एक कृषि इंजीनियरिंग महाविद्यालय खोलना भी प्रस्तावित है जिसमें शोधकार्य के अतिरिक्त फसल कटाई उपरान्त की तकनीक और कृषि व्यापार प्रबन्धन की शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी। शोध कार्यों को नई दिशा देने हेतु प्रदेश सरकार ने कृषि फंड की शुरुआत की है। इन सभी प्रयासों से प्रदेश में कृषि उत्पादन में वृद्धि की संभावनाएं और बढ़ गई हैं।

कृषि प्रौद्योगिकी और शोध की व्यवस्था के अतिरिक्त राज्य सरकार विभिन्न फसलों की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए अनेक योजनाओं के माध्यम से कृषकों को सुविधाएं उपलब्ध करा रही है। विशेष खाद्यान्न उत्पादन कार्यक्रम की ही भांति भारत सरकार के सहयोग से प्रदेश में 'राष्ट्रीय दलहन विकास कार्यक्रम' भी चलाया जा रहा है। राज्य के किसानों को विभिन्न फसलों के उच्च गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराने हेतु 'भारतीय बीज अधिनियम 1966' के अनुसार उत्तर प्रदेश में बीज प्रमाणीकरण संस्था की लखनऊ में स्थापना के साथ 1977 से कृषकों को प्रमाणित बीज उपलब्ध कराए जा रहे हैं। विश्व बैंक के सहयोग से प्रदेश में एक ग्रीन हाउस और एक ग्लास हाउस भी स्थापित किया जा रहा है। विश्व बैंक के वित्तीय सहयोग से उत्तर प्रदेश के सम्पूर्ण मैदानी जिलों में एक 'कृषि विस्तार परियोजना' भी वृहद कार्यक्रम के रूप में चलाई जा रही है। इसमें कृषि विश्वविद्यालय के तकनीकी सहयोग से कृषकों को ग्राम स्तर पर कृषि की आधुनिकतम विधियां और तकनीकें सुलभ कराई जा रही हैं। सिंचाई के लिए प्रदेश में लगभग 75 हजार किलोमीटर लम्बी नहरों और 28 हजार नलकूपों का प्रयोग किया जा रहा है। नहरों का प्रदेश में जाल बिछा हुआ है।

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा चालू वर्ष में फिर कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता का क्षेत्र घोषित किया गया है। अतः विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन से कृषि क्षेत्र को विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। सरकार के सम्पूर्ण बजट का 70 प्रतिशत ग्रामीण विकास पर व्यय करने के निश्चय ने भी इस क्षेत्र को बढ़ावा दिया है। प्रदेश सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से कृषकों को बीजों (राष्ट्रीय बीज विकास नीति 1988 के अनुरूप), उर्वरकों, कृषि यंत्रों, कीटनाशकों आदि पर अनुदान देकर, सिंचाई की सुविधाओं को बढ़ाने हेतु बांधों, नहरों, नलकूपों आदि का निर्माण कराकर, कृषि उपजों का समुचित मूल्य दिलाकर, शोध संस्थानों के माध्यम से कृषकों को नवीन तकनीक पहुंचाकर तथा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि के विकास के लिए अधिकाधिक धनराशि की व्यवस्था करके कृषि के विकास के लिए निरन्तर प्रयास कर रही है। साथ ही केन्द्र सरकार और विश्व बैंक आदि के माध्यम से भी पर्याप्त सहयोग मिल रहा है। इसके अतिरिक्त कृषकों द्वारा भी स्वयं अपने स्तर पर अनेक प्रयास किए गये हैं और इन सभी की मिली-जुली परिणति ही प्रदेश में कृषि की सुदृढ़ स्थिति की परिचायक है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रदेश में कृषि क्षेत्र विकास की ओर अग्रसर है और इसने ग्रामीण विकास कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रदेश में कृषि क्षेत्र समस्याओं से मुक्त है और अब इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। वास्तविकता यह है कि इन

क्षेत्र में विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ छोटे और गरीब किसानों को उपलब्ध नहीं हो पाता है जिन्हें इसकी अत्यधिक आवश्यकता है। अन्य क्षेत्रों की भांति कृषि के क्षेत्र में भी सरकारी तंत्र से अपेक्षाएं पूर्ण नहीं हो रही हैं। अशिक्षा, गरीबी, बिजली और सिंचाई के साधनों की अपर्याप्तता, गुटबन्दी और अज्ञानता जैसे अनेक कारणों से अभी भी यह क्षेत्र प्रभावित है। अज्ञानता के कारण अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग इस क्षेत्र के लिए हानिकारक हो सकता है। सरकारी और सहकारी संस्थाओं से कृषकों को कृषि विकास के लिए यद्यपि ऋण की सुविधाएं सरकारी आंकड़ों के रूप में उपलब्ध हैं लेकिन इस कार्य में होने वाली अनियमितताओं की भी कमी नहीं है। अनेकानेक घोषणाओं के बावजूद, बिजली, पानी के लिए कृषकों को फसल के समय पर तरसना पड़ता है। निर्धारित दरों से अधिक दरों पर आवश्यक बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि खरीदने के लिए विवश होना पड़ता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु साहूकारों तथा बिचौलियों की शरण में जाना आज भी अनेक कृषकों की विडम्बना है। लेकिन यदि इसी गति से कृषि के क्षेत्र में सरकारी और निजी प्रयास होते रहे तो उक्त अनेक कठिनाइयों का निराकरण तो होगा ही बल्कि वह दिन भी दूर नहीं जब उत्तर प्रदेश दूसरे राज्यों के लिए कृषि के क्षेत्र में अनुकरणीय उदाहरण होगा और गांवों तथा उनमें बसने वाली भारत की आत्मा अर्थात गांववासियों का सम्पूर्ण विकास भी सुनिश्चित किया जा सकेगा।

संयुक्त निदेशक, प्रशिक्षण प्रभाग,
राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश,
कालाकांकर भवन, लखनऊ।

खुश है आज गांव का बरगद

✍ उषा जोशी

देखा करता था कल तक
गांव की सरहद पर खड़ा
यह बरगद
गांव के सूखते कुएं
और "ठाकुर के कुएं" पर
पानी लेने की मनाही
"पूस की रात" में
ठण्डे कांपते बदनों को
ढाकती फटी चीथड़े होती
रजाई
भूख से बिलखते बच्चे
हीरामन के
और बिक जाते 'हीरा मोती'
जमीन खेत खलिहान से
नहीं बुझ पाती प्यास
साहूकार की खाता वही
चाट जाती पसीना
कमर तोड़ मेहनती मगर
अनपढ़ गंवार किसान की

पर आज
खुश है गांव का बरगद
क्योंकि अब हीरामन
साक्षर है
और साहूकार के ब्याज पर
पाला पड़ गया है
उसकी पोथियों पर ताला पड़ गया है
सरकार ने खटिया सरका दी है
साहूकार की
अब गांव में साक्षरता है
अब गांव में खुशहाली है।

156 एम आई जी-5,
सरस्वती नगर,
भोपाल, 462003 (म. प्र.)

रेगिस्तान में पशुपालन व्यवसाय

शम्भुदान रतनू

थार के विशाल रेगिस्तान में स्थित जैसलमेर जिले के निवासियों की आजीविका पशुपालन पर निर्भर है। यह जिला देश के उन गिने चुने जिलों में से है जहां कृषि के स्थान पर पशुपालन को प्रमुखता प्रदान की गई है। मानसूनी वर्षा के क्षेत्र से दूर होने के कारण इस क्षेत्र में आम तौर पर वर्षाभाव के कारण अकाल की स्थिति बनी रहती है। कभी-कभार होने वाली बरसात के कारण जिले के थोड़े बहुत भूभाग में खरीफ की फसल की बुवाई की जाती है। इसके विपरीत जिले की प्राकृतिक स्थिति पशु पालन व्यवसाय के अनुकूल है। जिले में पौष्टिक सेवण घास के विशाल प्राकृतिक चरागाह और झाड़ झंखाड़ों की प्रचुरता है। जिले की प्रसिद्ध थारपारकर नस्ल की दुधारू गायों, लम्बी रेशेदार ऊन वाली हृष्ट-पुष्ट भेड़ों, शुष्क वातावरण में कम पानी पर आराम से जीवन यापन करने वाली बकरियों, तेज चाल तथा सवारी व भार ढोने के लिए अत्यन्त उपयोगी ऊंटों और अन्य पशुधन के पालन-पोषण और विक्रय से यहां के लोगों को प्रतिवर्ष लगभग 120 करोड़ रुपये की आय हो रही है जबकि कृषि कार्यों से हर साल लगभग 20 करोड़ रुपये मूल्य के धान्य का उत्पादन हो पाता है।

जैसलमेर जिले के पशुधन में सर्वोच्च स्थान इस क्षेत्र में पाई जाने वाली सुगठित और श्वेतवर्णी थारपारकर नस्ल की गायों का है। जिले के चान्दन गांव में सुखाड़िया कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर के तत्वावधान में संचालित पशुधन अनुसंधान केन्द्र में थारपारकर गौवंश के संरक्षण और संवर्द्धन हेतु सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं।

जैसलमेर जिले के ग्रामीण अंचलों में अनेक स्थलों पर शुद्ध थारपारकर नस्ल की गायें पाई जाती हैं तो कुछ गांवों में संकर नस्ल की गायें भी देखी जा सकती हैं। शुद्ध थारपारकर नस्ल के पशुधन का सिर मध्यम आकार का होता है तथा चौड़ा माथा एवं बड़ी व सुन्दर आंखें होती हैं। इस वंश की गाय-बैलों के कान लम्बे एवं चौड़े तथा काले रंग के होते हैं। थारपारकर नस्ल की गायें प्रति ब्यांत 4,375 लीटर तक दूध देती हैं।

जिले में गौ वंश ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का मूल आधार है। गाय के दूध और दूध से बने पदार्थों की बिक्री से वहां हजारों परिवार जीवन यापन कर रहे हैं।

जैसलमेरी गायों का घी प्राचीनकाल से ही सुमधुर, सुगन्ध और पौष्टिकता के लिए प्रसिद्ध रहा है। सेवण घास की चराई के कारण पीतवर्णी घी अपने सुस्वाद के कारण हाथों हाथ बिक जाता है। जिले के ग्रामीण अंचलों में आज भी हजारों पशुपालक गायों के दूध से घी तैयार करके बेचते हैं तथा दैनिक आवश्यकता की सामग्री खरीद कर अपनी गृहस्थी चलाते हैं। घी के साथ ग्रामीणों को मक्खन, दही एवं छाछ भी मिल जाती है। छाछ जैसलमेर-वासियों के भोजन का आवश्यक अंग है। गांवों में भोजन के बाद छाछ पीना लोगों की आदत में शुमार हो गया है।

जिले में मामूली वर्षा होने पर किसानों द्वारा ग्वार की बुवाई की जाती है जो गायों के वाटे के लिए अत्यन्त उपयोगी रहती है।

थारपारकर नस्ल के साथ ही राठह और काकरेज नस्ल की गायें भी पाई जाती हैं। सीमावर्ती क्षेत्र में सिन्धी नस्ल की गायें भी मिलती हैं।

जैसलमेरी क्षेत्र में पैदा होने वाले बैलों को सामान्यतया गुजरात ले जाकर बेचा जाता है। ये बैल हल जुताई और गाड़ी खींचने के काम आते हैं।

राजस्थान के अलग-अलग क्षेत्रों में पायी जाने वाली भेड़ों की प्रमुख आठ नस्लों में जैसलमेरी नस्ल की भेड़ों की ऊन से कालीन और ऊनी वस्त्र तैयार किये जाते हैं। रेशेदार होने के कारण इस वंश की भेड़ों की ऊन की लम्बाई अपेक्षाकृत अधिक होती है।

जैसलमेरी नस्ल की भेड़ हृष्टपुष्ट और शरीर में भारी होती है। इनके चेहरे का रंग काला अथवा गहरा भूरा होता है। इस नस्ल की मादा भेड़ का भार जहां 35 से 43 किलो होता है वहीं

नर भेड़ का भार 40 से 45 किलो तक होता है। इसकी ऊन वर्ष में दो बार कतरी जाती है तथा औसतन एक भेड़ से प्रति वर्ष साढ़े पांच किलो तक ऊन प्राप्त की जाती है।

जिले में भेड़ों की ऊन की कताई और बुनाई के कार्यों से अनुमानतः बीस हजार व्यक्तियों को रोजगार मिल रहा है। जिले के ग्यारह खादी संस्थानों द्वारा प्रति वर्ष लगभग पांच से सात करोड़ रुपये मूल्य की लागत के ऊनी वस्त्रों का विक्रय किया जाता है।

जैसलमेरी भेड़ें देश के बड़े शहरों के साथ ही विदेशों को भी निर्यात की जाती हैं। अरब देशों में इनकी अत्यधिक मांग है। इन भेड़ों के मेढ़ों के विक्रय से प्रति वर्ष दस-पन्द्रह करोड़ रुपये की आय होती है।

ग्रामीण अंचलों में व्याप्त झाड़-झंखाड़ों की पत्तियों के साथ ही प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाले तूम्बे भेड़ों का प्रिय भोजन है। इसी प्रकार वर्ष भर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध सेवण घास भी भेड़ों के भोजन का मुख्य भाग है। जिले में इन्दिरा गांधी नहर के आगमन से सेवण घास के चरागाहों को पानी मिल जाने से भेड़ पालकों को बहुत राहत मिली है। नहर के किनारे सघन वृक्षारोपण के कारण पेड़ों की सूखी पत्तियां भी भेड़ों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।

जिले में वर्ष 1992 में कराई गई पशुगणना के अनुसार 4,96,612 बकरे-बकरियां हैं। जैसलमेर जिले में बकरियों की देशी नस्लें ही पाई जाती हैं। इन बकरियों से जहां पशुपालकों को दूध मिलता है वहीं बकरों को बेच कर अतिरिक्त आय जुटायी जा सकती है। बकरी की जट को ऊंट की जट के साथ मिलाकर बिछाने के लिए गद्दे और जट पट्टियां तैयार की जाती हैं।

जिले में सेवण घास के चरागाहों, झाड़ झंखाड़ों एवं विशाल भूभाग की उपलब्धता के कारण बकरी पालन में कोई खास खर्च नहीं करना पड़ता। ग्रामीण ग्वार और तूम्बे के बीज खिलाकर बकरियों से पौष्टिक दूध प्राप्त करते हैं। गरीब की गाय कहलाने वाली बकरियों से भी जिले के हजारों परिवारों को रोजगार मिल रहा है।

जैसलमेरी ऊंट सुडौल शरीर, तेज चाल तथा भार वहन क्षमता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। जिले में इस समय लगभग 60 हजार ऊंट हैं। इन ऊंटों की जट गद्दे आदि बनाने के काम आती है। जिले में ऊंटों का उपयोग सामान्यतया हल चलाने, पानी लाने और सवारी हेतु किया जाता है।

जिले में पर्यटन गतिविधियों के बढ़ने के साथ ही ऊंटों का भी महत्व बढ़ता जा रहा है। स्वर्ण नगरी भ्रमण हेतु आने वाले विदेशी पर्यटकों के लिए "कैमल सवारी" पहली पसन्द बनती जा रही है। इस व्यवसाय में जिले के पांच सौ से अधिक ऊंट लगे हुए हैं।

पशुधन बाहुल्य जैसलमेर जिले का प्राकृतिक वातावरण तथा लोगों की अभिरुचि पशुपालन में अत्यन्त सहायक है। इस क्षेत्र में आय के अतिरिक्त संसाधनों के अभाव के कारण भविष्य में भी पशुपालन आधारित अर्थ व्यवस्था के बने रहने की ही विपुल संभावनाएं हैं। सरकारी स्तर पर पशुओं की स्वास्थ्य-रक्षा हेतु जहां आवश्यक चिकित्सा सुविधा सुलभ करायी जा रही है वहीं इनकी खरीद हेतु बैंकों द्वारा विभिन्न ऋण योजनाओं में ऋण राशि सुलभ करायी जा रही है।

सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
जैसलमेर (राजस्थान)

कुछ अपरिहार्य कारणों से हमें 'कुरुक्षेत्र' का मूल्य बढ़ाना पड़ रहा है। अप्रैल 95 अंक से पत्रिका का मूल्य पांच रुपये किया जा रहा है। वार्षिक चन्दा पचास रुपये होगा। आशा है कि हमारे सुधी पाठकगण हमारी कठिनाइयों को समझते हुए अपना सहयोग यथावत बनाये रखेंगे।

–सम्पादक

पोलीकल्चर पद्धति से मछली पालन

धीरेन्द्र कुमार सिंह एवं डा. ए.पी. राव

ारतीय अर्थ व्यवस्था में मत्स्य उद्योग का महत्वपूर्ण योगदान है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग दो प्रतिशत मत्स्य ोग से प्राप्त होता है। यह सर्वविदित है कि मछली प्रोटीन का ति उत्तम स्रोत है। परिणामस्वरूप इसकी मांग विश्व में दिन तिदिन बढ़ती जा रही है। भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष मछली उपयोग केवल 3.5 कि. ग्राम है, जबकि अमरीका में 15 . ग्राम तथा जापान में 42 कि.ग्राम है। इससे मछली की घरेलू पत का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। सन् 2000 क पूरे विश्व में मछली की मांग लगभग 13 करोड़ टन होगी वकि उत्पादन लगभग 10 करोड़ टन होगा। इससे मांग व पूर्ति बीच अन्तर का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मछली मांग व पूर्ति के बीच अन्तर समाप्त करने के लिए इनके पालन परम्परागत विधियां पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि उनसे अपेक्षित त्रा में मछली का उत्पादन नहीं हो सकता है। इस उद्योग में ई वैज्ञानिक तकनीक अपनाकर तथा उचित प्रबन्ध करके मत्स्य द्योग को काफी बढ़ाया जा सकता है और अधिक उत्पादन प्राप्त या जा सकता है।

मत्स्य पालन के लिए हमारे देश में लगभग 7.5 लाख हेक्टेयर त्र मीठे जल के तालाब और पोखरों के रूप में उपलब्ध है, जबकि सके अतिरिक्त 60 हजार हेक्टेयर जल-क्षेत्र को मछली पालन तु उपयोग में लाया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के मत्स्य पालन तु नहरों और जलाशयों का उपयोग किया जा सकता है। इस मय देश में मछली उत्पादन की औसत दर लगभग दो टन प्रति क्टेयर प्रति वर्ष है जिसे बढ़ाकर 10 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष क किया जा सकता है। इस प्रकार देश में मछली उत्पादन को 0 लाख टन तक बढ़ाया जा सकता है जबकि इस समय देश का कुल मछली उत्पादन लगभग 41 लाख टन प्रतिवर्ष है।

मछलियों में भी अधिकतर कार्प (शफरी) जाति की मछलियों का पालन होता है, क्योंकि इनकी अनेक प्रजातियां पायी जाती हैं। पोलीकल्चर पद्धति में एक ही उत्पादन इकाई में मछली की विभिन्न प्रकार की प्रजातियों का पालन एक साथ किया जाता है। लेकिन इस पद्धति में मछलियों के भोजन ग्रहण करने के स्वभाव की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रजातियों के संचय का समीकरण बनाना पड़ता है।

तालाबों का प्रबन्ध

तालाबों के उचित प्रबन्ध द्वारा अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि तालाबों में समय-समय पर जैविक उर्वरकों का प्रयोग किया जाए तथा प्रजातियों के अनुपात में भिन्नता लाई जाए। साथ ही साथ पूरक आहार द्वारा पोषण की उचित व्यवस्था की जाए। हाल के वर्षों में चीनी कार्प मछली की बहु-प्रजातियों के पालन में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

कार्प प्रजाति की मछलियों के पालन के लिए तालाबों में खरपतवार, जलीय कीट तथा परभक्षी मछलियां नहीं होनी चाहिए। तालाबों के चुनाव के समय इस बात की उचित व्यवस्था हो कि तालाब में स्वच्छ व प्रदूषण मुक्त जल उपलब्ध हो। तालाब के लिए चिकनी मिट्टी युक्त भूमि अथवा चिकनी दोमट भूमि उपयुक्त होती है जिसका पी.एच. लगभग 7.0 हो। मछली तालाबों से जो कीचड़ निकलता है उसमें पौधों के लिए अनेक आवश्यक पोषक तत्व होते हैं। इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटेशियम की काफी मात्रा होती है और इनका प्रयोग खेतों में फसल उत्पादन के लिए किया जा सकता है।

तालाबों में मछली पालन वैज्ञानिक पद्धति से करने के लिए पशुओं का मल-मूत्र और पौधों के अवशेष तथा गोबर गैस से निकलने वाला कीचड़ भी मछली पालन के लिए एक आदर्श उर्वरक संसाधन का काम करता है। कार्प मछली पालन के लिए तालाबों में 30-40 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष गोबर गैस के कीचड़ के उपयोग का सुझाव दिया जाता है।

तालाबों की सफाई करना

पुराने तालाबों, पोखरों आदि में अनेक हानिकारक जीव-जन्तु

होते हैं जिन्हें समाप्त करने के लिए महुआ की खली और ब्लीचिंग पाउडर के प्रयोग का परंपरागत उपाय अथवा ब्लीचिंग पाउडर और यूरिया को मिलाकर प्रयोग में लाया जा सकता है। इनका प्रयोग एक बार करने के बाद यह काफी दिनों के लिए पर्याप्त होता है। तालाबों में प्रति हेक्टेयर 200 कि.ग्राम ब्लीचिंग पाउडर तथा 10 कि. ग्राम यूरिया के मिश्रण को छिड़कने की सलाह दी जाती है। इससे अवांछनीय जीव जन्तु समाप्त हो जाते हैं।

मछलियों की प्रमुख प्रजातियां व विशेषताएं

मत्स्य पालन के लिए प्रमुख कार्प प्रजातियां जिनका भार एक वर्ष में एक कि.ग्राम प्रति मछली तक हो जाता है वे पोलीकल्चर अथवा मिश्रित कार्य पालन के लिए उपयुक्त होती हैं। देशी कार्प प्रजातियों में कटला (कटला-कटला), रोहू (लोविओ रोहिटा), मृगल (सिरहिनस मृगाला) तथा शफरी (कार्प) प्रजातियों में सिल्वर कार्प (हाइपोफैथलमिथिक्स मोलिट्रिक्स), ग्रास कार्प (टोनोफैरिनगोडोन आईडेला) तथा कामन कार्प (साइप्राइनस कार्पिओ) प्रमुख हैं। मिश्रित कार्प पालन के लिए भारतीय और चीनी कार्पों की छः प्रजातियां हैं। किन्तु प्रजातियों का मिश्रण स्थानीय मांग के अनुसार विभिन्न होता है। प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष 4-6 टन उत्पादन प्राप्त करने के लिए छः कार्प प्रजातियों कटला, रोहू, मृगल, सिल्वर कार्प, ग्रास और कामन कार्प का अनुपात क्रमशः 15-20, 15-20, 10-15, 15-25, 15-20 और 10-15 की औसत से होना चाहिए तथा इनकी कुल संख्या 5000 से 6000 प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए।

देशी कटला सबसे अधिक तेजी से बढ़ती है और इसे पूरे देश में पाला जा सकता है। इसका भार प्रथम वर्ष में एक से डेढ़ किलोग्राम प्रति मछली की दर से बढ़ता है। यह तालाब की सतह से भोजन ग्रहण करती है और मुख्यतः जैविक पदार्थों पर ही आश्रित रहती है।

रोहू की बढ़ोतरी गहरे तालाब में अपेक्षाकृत अधिक होती है। पहले वर्ष इनका वजन 800 से 1000 ग्राम तक हो जाता है। मृगल तालाब के तल पर रहती है, अतः इसका भोजन सड़े-गले जैविक पदार्थ तथा मलवा होता है। पहले वर्ष इनका वजन 500 से 800 ग्राम तक बढ़ जाता है।

सिल्वर कार्प जल की सतह पर पौधों की पत्तियों इत्यादि से भोजन ग्रहण करती है। यह शैवाल के नियंत्रण में काफी उपयोगी है। यह बहुत तेजी से बढ़ती है और छः माह में इनका वजन एक किलोग्राम तक हो जाता है।

ग्रास कार्प जलीय खरपतवारों तथा स्थलीय वनस्पतियों को बड़े चाव से खाती है तथा जलीय खरपतवारों के नियंत्रण के लिए यह बहुत उपयोगी है। इसका भी वर्ष में लगभग एक कि. ग्रा. भार हो जाता है।

कामन कार्प भी बड़ी तेजी से बढ़ती है। यह पांच-छह माह में 500 से 600 ग्राम तक हो जाती है तथा यह सर्वाहारी होती है। यह जल की तली में रहती है और मृगाल के समकक्ष ही अपना भोजन ग्रहण करती है।

पूरक आहार द्वारा मछलियों का पोषण

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि पोलीकल्चर में पूरक आहार का विशेष महत्व होता है। तालाबों में मछलियों की अच्छी बढ़वार और उत्पादन के लिए उन्हें पूरक आहार देना आवश्यक है। पूरक आहार के रूप में इन्हें खली (नीम व महुए की छोड़कर) और धान की कनी अथवा राइस पालिश देने की सलाह दी जाती है। खली तथा कनी को आधा-आधा मिलाकर मिश्रण तैयार कर लेते हैं तथा इस मिश्रण को प्रतिदिन तालाब में निश्चित स्थान व समय पर डालना चाहिए। पूरक आहार मछलियों के शारीरिक भार के अनुसार दो से तीन प्रतिशत प्रति किग्रा. भार की दर से देना चाहिए। पूरक आहार को आटे जैसा सानकर किसी छिछले बर्तन में रखकर तालाबों में डालना चाहिए।

पोलीकल्चर पद्धति में एक वर्ष की अवधि के उपरान्त मछलियों के शिकार की सलाह दी जाती है। आर्थिक दृष्टि से मछलियों को तालाबों में एक वर्ष से अधिक नहीं रखना चाहिए। दूसरे वर्ष से प्रायः यह देखा गया है कि इनमें लागत अधिक आती है तथा वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है।

एजोला पद्धति द्वारा पालन

एजोला जल में स्वतन्त्र रूप से तैरने वाला जलीय पौधा है जो सिरवायोटिक साइनोबैक्टिरियम ऐनावाइना ऐजोलाई की तरह वातावरण से नाइट्रोजन ग्रहण करता है। मत्स्य पालन में यह नाइट्रोजन युक्त खरपतवार के रूप में उपयोगी है। चालीस टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष की दर से इसके प्रयोग की सलाह दी जाती

(शेष पृष्ठ 31 पर)

बच्चों में अंधेपन : कारण और निवारण

डा. सीताराम सिंह "पंकज"

बच्चों में अंधेपन की समस्या आज एक आम बीमारी की तरह फैलती जा रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में प्रति वर्ष लगभग 40,000 बच्चे विटामिन 'ए' की कमी से अंधे हो जाते हैं। अंधेपन के शिकार हुए बच्चों में एक वर्ष से पांच वर्ष तक के बच्चों की संख्या सबसे अधिक होती है। अंधेपन के कई कारण हैं। यह जन्म से लेकर बुढ़ापे तक कभी भी हो सकता है। यदि आरम्भ से ही बच्चों को विटामिन युक्त पौषक आहार मिलता रहे तो वे आंखों की विभिन्न बीमारियों से बच सकते हैं।

गर्भवती महिलाओं को पौष्टिक आहार : नवजात शिशु में सामान्यतः अंधापन नहीं होता किन्तु इसके प्रति गर्भवती महिलाओं को सदैव सचेत रहना चाहिये। उन्हें प्रतिदिन पौष्टिक तथा संतुलित आहार लेते रहना चाहिए। इससे गर्भस्थ शिशु का शारीरिक और मानसिक विकास उचित ढंग से हो सकेगा। गर्भवती महिलाओं के भोजन में दूध, दही, अंडे, फल और हरी सब्जियां समुचित मात्रा में होनी चाहिए।

जांच कराते रहना चाहिये : गर्भवती स्त्रियों को प्रति माह स्वास्थ्य केन्द्र में जाकर जांच भी करवानी चाहिये। अगर उनमें रक्त की कमी हो (जैसा कि अक्सर होता है), तो उन्हें लौह तत्व की गोलियों का नियमित सेवन करना चाहिए।

यदि गर्भवती महिला को सुजाक रोग हो तो उसकी जन्म नली में स्थित जीवाणु प्रसव के समय बच्चे की आंख में प्रवेश कर जाते हैं। ये स्थिति बहुत खतरनाक होती है। ऐसे नवजात शिशु की आंखे लाल और सूजी रहती हैं। चिकित्सक इसे सुजाक रोग से हुई आंख की सूजन (गोनोकोकल सोर आइज) कहते हैं।

बच्चों के रोगों की उपेक्षा न करें : जिन बच्चों को हमेशा दस्त की शिकायत रहती है या खसरा निकल आता है उनके शरीर में कभी-कभी विटामिन 'ए' की कमी हो जाती है। जाहिर है कि विटामिन 'ए' की कमी से ही बच्चे या वयस्कों में अंधापन उत्पन्न होता है। अतः बच्चों की बीमारियों का इलाज अविलम्ब शिशु रोग विशेषज्ञ से करवाना चाहिए।

शिशुओं में अंधापन : कुपोषण और संतुलित आहार के अभाव में छोटे बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है। ऐसे बच्चों का समुचित शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो पाता और उनमें से कई अपनी आंखों की ज्योति खो बैठते हैं। भारत सहित विकासशील देशों में शिशु अंधापन दिनों-दिन एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है।

रोग ग्रसित बच्चों की आंखों की चमक धीरे-धीरे खत्म हो जाती है और उनकी आंखों में सलेटी रंग के धब्बे उभरने लगते हैं। इसे 'बिटोट्स स्पाट' कहते हैं। बाद में उनकी आंखें सूजने लगती हैं और झुर्रियों से भर जाती हैं। तत्पश्चात यह रतौंधी में बदल जाता है। ऐसे बच्चों को रात्रि में कम दिखनाई पड़ता है। और आंखों से थोड़ा काम लेने पर भी आंखें दुखने लगती हैं। ऐसे बच्चों को हरी पत्तेदार सब्जियां तथा विटामिन 'ए' की गोलियां देनी चाहिये।

यदि बच्चों की आंखों में सूजन हो, आंखें लाल हों, उनमें खुजली और जलन हो या आंखों से पानी बहता हो तो कुशल चिकित्सक की देख-रेख में उनका इलाज कराना चाहिये। नहर-नदियों या तालाबों के गंदे जल में स्नान करने से भी आंखों में रोगजन्य जीवाणुओं का संक्रमण हो सकता है।

आंखें साफ करते रहें : आंखों की पूर्ण सुरक्षा के लिये आवश्यक है कि आंखों को दिन में तीन-चार बार स्वच्छ जल से धोया जाए और उन्हें साफ कपड़े से पोंछा जाए। आंख की कुछ बीमारियां संक्रामक होती हैं, जो शीघ्र ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैल जाती हैं। इसके अतिरिक्त धूल, धुआं और हानिकारक गैसों से भी आंखों को हानि पहुंचती है।

अंधेपन के अन्य कारण : नेत्र की अन्यान्य बीमारियां—रोहे, सूजन, असमय झुर्रियां पड़ना, सफेद दाग या धब्बे, आंखों के तारे का घटना-बढ़ना इत्यादि भी अंधेपन का कारण बनती हैं। कभी-कभी बच्चों के खेलों—क्रिकेट, गुल्ली-डंडा, तीर-कमान आदि से भी आंखों में चोट लग जाती है और भली-चंगी आंखें क्षतिग्रस्त हो

जाती हैं।

बचाव के उपाय : अंधापन निवारण के लिए यह आवश्यक है कि गर्भस्थ शिशु की भली-भांति देख-रेख की जाए। गर्भवती स्त्रियों का आहार संतुलित और पौष्टिक हो। अंधापन निवारण हेतु भारत सरकार ने अनेक राज्यों में विटामिन 'ए' कार्यक्रम लागू किया है। समन्वित बाल विकास परियोजना के तहत स्कूली बच्चों को पूरक आहार देने की भी योजना है।

बच्चों को अगर उनके माता-पिता विटामिनों से भरपूर भोजन देते रहें, तो बच्चे स्वतः अनेक बीमारियों से मुक्त रहेंगे। हरी शाक-सब्जियों, पालक, धनिया, गाजर, पपीता के साथ-साथ दूध, फल, अंडे, मक्खन आदि का सेवन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। नवजात शिशु को माता का दूध प्रारम्भ से ही देना चाहिए। प्रारम्भिक गाढ़े दूध में "कोलोस्ट्रम" रहता है, जो प्रोटीन और विटामिन 'ए' का अच्छा स्रोत है। यह बच्चों को रोगों के संक्रमण से बचाता है तथा उन्हें स्वस्थ रखता है। यदि प्रारम्भिक सावधानियां बरती जाएं तो निस्संदेह शिशुओं को अंधेपन से बचाया जा सकता है।

अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग,
के.एस.आर. कालेज,
सरायरंजन,
समस्तीपुर-848127

(पृष्ठ 29 का शेष)

पोलीकल्चर पद्धति से...

है। इससे नाइट्रोजन फास्फोरस और पोटाश प्राप्त होता है। साथ ही साथ 1500 कि.ग्रा. जैविक पदार्थ भी मिलता है। किसान नये शोध के रूप में एजोला पद्धति से मछली पालन कर सकते हैं। इस पद्धति से पर्यावरण संरक्षण के अनुकूल उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा मिलता है।

रोग और नियंत्रण

पोलीकल्चर पद्धति अत्यन्त जोखिम भरी है, क्योंकि रोगों की समस्या के कारण इसकी व्यावसायिक विफलता का जोखिम लगातार बना रहता है। संग्रहण के उच्च स्तर और पर्यावरण स्थितियों में परिवर्तन को देखते हुए रोगों का भय सदैव बना रहता है। उचित प्रबन्ध और नियमित चिकित्सा से रोगों की समस्या का समाधान किया जा सकता है। मछलियों की त्वचा और गिल के संक्रमण पर रोग के लिए रासायनिक उपचार किया जाता है। ये संक्रमण बैक्टिरियल तथा फंफूद के संक्रमणों के कारण होते हैं। एक रोग निरोधी उपाय के रूप में मासिक अन्तराल पर मछलियों को पोटेशियम परमैंग्नेट के घोल में स्नान कराया जाता है। यह पद्धति बैक्टिरिया तथा परजीवी संक्रमणों के उपचार के लिए काम में लायी जाती है।

मछली पालन के विस्तार हेतु सुझाव

पोलीकल्चर पद्धति द्वारा वैज्ञानिक ढंग से मछली पालन कर मछली उत्पादन की वृद्धि करना नयी तकनीक है। किसी भी नयी तकनीक को व्यक्ति तब तक नहीं अपनाता है जब तक कि उसे उसका प्रत्यक्ष लाभ दिखाई न दे। देश की अधिकांश जनता अशिक्षित है और उन्हें इस नयी तकनीक की जानकारी नहीं है। इस तकनीक को आम जनता तक पहुंचाने के लिए आवश्यक है कि ऐसे स्थानों पर जहां इच्छुक व्यक्ति आसानी से पहुंच सकें, आदर्श तालावों का निर्माण हो तथा प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में तालाव लोगों को दिखाये जा सकें। इससे उन्हें यह मालूम हो जायेगा कि पोलीकल्चर द्वारा मछली उत्पादन किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है।

मछली उत्पादन में वृद्धि के लिए हो रहे अनुसंधानों का प्रयोग सप्रमाण आदर्श तालावों पर प्रशिक्षण द्वारा भी प्रदान करना चाहिए ताकि मत्स्य पालक आश्वस्त होकर उन्हें अपनाएं और इस तरह अपनी तथा देश की आय बढ़ाएं।

शोध छात्र,
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
नरेन्द्र नगर (कुमारगंज),
फैजाबाद।

रोचक कहानी महीनों की

योगेश चन्द्र शर्मा

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त वर्तमान कैलेंडर को ग्रेगेरियन कैलेंडर कहते हैं। इस कैलेंडर को वर्तमान स्वरूप ने में इंग्लैंड के पोप ग्रेगरी की विशिष्ट भूमिका रही। इसलिए न्हीं के नाम से इस कैलेंडर को भी ग्रेगेरियन कैलेंडर कहा जाने गा।

ग्रेगेरियन कैलेंडर का मूल स्रोत रोमन कैलेण्डर था, जो लम्बे मय तक सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य में प्रचलन में रहा। रोमन कैलेंडर प्रारम्भ में केवल दस महीने होते थे। उनके नाम इस प्रकार —मार्टियस, एप्रिलिस, मेयस, इथुनस, क्विंटिल्स, ऐक्सटिलिस, टिम्बर, अक्टूबर, नवंबर तथा दिसम्बर। सितंबर, अक्तूबर, वम्बर तथा दिसम्बर महीनों के नाम अंकों के आधार पर थे तथा प नाम रोम के विभिन्न देवी देवताओं के नाम पर थे। बाद में समें देवी देवताओं के नाम के आधार पर ही दो माह और जोड़ दए गए वे थे इनुसरियस तथा फेबुएरियस। वर्ष में दो नए माह ोड़ने का कारण यह था कि दस माह के वर्ष में केवल 295 दिन ते थे, जबकि पृथ्वी द्वारा की जाने वाली सूर्य की परिक्रमा से नने वाले वर्ष में 365 दिनों से भी कुछ अधिक का समय होता ा। दो माह की इस वृद्धि से रोमन वर्ष के दिन कुछ और बढ़ ए। फिर भी वास्तविक वर्ष से रोमन वर्ष अब भी पीछे रहा, जिससे समें बाद में अनेक संशोधन किए गए।

रोमन वर्ष का प्रारम्भ मार्टियस (मार्च) से होता था। यह नाम म के युद्ध देवता के नाम पर रखा गया था जो आगे बढ़ने की रणा देता है। इसी प्रकार वर्ष का प्रथम माह भी हमें प्रगति का न्देश देता है। इसी दृष्टि से उन दिनों मार्च से वर्ष की शुरुआत ी जाती थी। कालान्तर में जब विचारों में कुछ परिवर्तन आया ौर लोगों में युद्ध के स्थान पर शांति की प्रवृत्ति बढ़ी तब बाद जोड़े हुए दो महीनों को वर्ष के शुरू में रख दिया गया। इसके ाथ ही इनुएरियस का नाम बदल कर जनवरी कर दिया गया। ह नया नामकरण रोमन देवता जोनस के नाम के आधार पर िया गया। रोमनवासियों की धार्मिक मान्यता के आधार पर ोनस के दो सर होते हैं। एक आगे देखता है और दूसरा पीछे। नवरी माह भी वर्ष के प्रथम माह के रूप में, गुजरे हुए वर्ष ी तरफ भी देखता है और आने वाले वर्ष की तरफ भी। इस कार रोमन शासकों को जनवरी को प्रथम माह बनाना बड़ा सार्थक लगा। दूसरा माह फेबुएरियस अब धीरे-धीरे बदलकर फरवरी कहा जाने लगा। मार्टियस वर्ष का तीसरा महीना हो गया, जिसे अब धीरे-धीरे मार्च कहा जाने लगा।

एप्रिलिस का अर्थ रोमन भाषा में उद्घाटन करना या खोलना होता है। इस माह में यूरोप में बसन्त का आगमन होता है। इसलिए प्रारम्भ में बसंत के आगमन के प्रतीक के रूप में ही इस माह का नाम एप्रिलिस रखा गया था। बाद में वर्ष के केवल दस माह होने के कारण यह माह बसन्त से काफी दूर होता चला गया। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के भ्रमण की सही जानकारी भी लोगों को दी। तब वर्ष में दो माह और जोड़कर एप्रिलिस का नाम पुनः सार्थक किया गया। धीरे-धीरे यह शब्द भी बोलचाल में सिकुड़कर केवल एप्रिल रह गया।

मेयस का नाम बसंत की देवी के नाम के आधार पर रखा गया था। चूंकि इस माह में भी बसंत का पूरा प्रभाव बना रहता है, इसलिए यह नाम भी पूरी तरह सार्थक था। कालान्तर में लोगों की जुबान पर 'मेयस' नाम भी सिकुड़कर केवल 'मे' या मई रह गया।

जिस तरह हमारे यहां देवताओं के स्वामी इन्द्र माने गए हैं, उसी प्रकार रोम में भी देवराज जीवस हैं और उनकी पत्नी का नाम है जूनो। इन्हीं देवी के नाम के आधार पर हमारे छठे माह जून का नामकरण हुआ। रोमन कैलेंडर में यह नाम हथुनस था, जिसे बाद में बदलकर जून कर दिया गया।

क्विंटिल्स का नाम परिवर्तन रोमन सम्राट जूलियस सीजर ने किया। उसने रोमन कैलेंडर में कुछ सुधार किए थे। इसलिए कैलेंडर के साथ अपने नाम को अमर बनाने के लिए अपनी जन्म तिथि वाले माह का नाम बदलकर जुलाई कर दिया। इसी प्रकार जूलियस सीजर के भतीजे आगस्टस सीजर ने अपने नाम को अमर बनाने की दृष्टि से 'सेक्सटिलिस' का नाम बदलकर आगस्टस कर दिया, जो बाद में बिगड़कर केवल अगस्त रह गया। शेष महीनों के नाम उनके प्राचीन अंकों के आधार पर ही बने रहे।

जनवरी को वर्ष के प्रारम्भ में रखने का कार्य सम्राट जूलियस सीजर ने किया था। इसका एक कारण यह भी था कि जनवरी माह में ही उसका राज्यारोहण हुआ था और इसलिए भी वह इस माह को विशिष्टता देना चाहता था। जूलियस सीजर के

शासनकाल में ही यह प्रश्न भी तेजी से उठा कि हमारे कैलेंडर में केवल 365 दिन होते हैं, जबकि वर्ष इससे कुछ बड़ा होता है। इसलिए यह तय किया गया कि कुछ अन्तराल के बाद किसी एक वर्ष में 365 के स्थान पर 366 दिन कर दिये जाएं तथा उसे लीप वर्ष कहा जाए। 'लीप' रोम के एक प्रसिद्ध त्यौहार का नाम था जिसे फरवरी में मनाया जाता था। लीप त्यौहार के नाम को अमर करने के लिए ही इस वर्ष का नाम लीप वर्ष रखा गया तथा एक दिन बढ़ाने के लिए फरवरी माह को ही चुना गया।

302020/611, मानसरोवर,
जयपुर (राजस्थान)

(पृष्ठ 2 का शेष) **पाठकों के पत्र...**

सरकारी संगठनों के प्रयासों की जानकारी भी इस पत्रिका से प्राप्त हो सकती है। पत्रिका के अध्ययन से यह अहसास हुआ है कि वास्तव में ढेर सारी ऐसी योजनाएं है जिन्हें सरकार ग्रामों के विकास हेतु संचालित कर रही है। गांववासी इस पत्रिका के नियमित सदस्य बनें तो यह उनके आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन में लाभदायक होगी।

रामगोपाल शर्मा,
अध्यक्ष, कोटा सहकारी विभाग कर्मचारी गृह निर्माण सहकारी समिति लि०,
मकान नं. 554, छावनी, कोटा (राजस्थान)

मुझे दिसम्बर 1994 का "कुरुक्षेत्र" (हिन्दी) पढ़ने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ। इसमें डा० विजय कुमार उपाध्याय जी की रचना 'कैसे बनाये सुलभ शौचालय' बेहद पसंद आई। इसकी भाषा बिलकुल सहज, सरल और सरस लगी। इसे पढ़ने के तुरन्त बाद बिना किसी की सलाह लिये बेहिचक सुलभ शौचालय बनाकर पर्यावरण को स्वच्छ रखा जा सकता है। इस निबंध को पढ़ने से पूर्व मुझे लगता था कि सुलभ शौचालय बनाना काफी खर्चीला तथा जटिल है। ऐसा पठनीय निबंध लिखने के लिए डा० विजय कुमार उपाध्याय जी बधाई के पात्र हैं।

आशा है कि मुझ जैसे अति मध्यमवर्गीय लोग अब सुलभ शौचालय का निर्माण कर पर्यावरण को स्वच्छ रख पायेंगे। इस ज्ञानवर्धक लेखन के प्रति मैं व्यक्तिगत रूप से डा० उपाध्याय जी का आभारी हूं।

प्रभात रंजन सिंह,
ग्राम-पथाय, पत्रलाय : तेलिया-नौगांव,
जिला-बांका (भागलपुर)
पिन-813101

आजकल हम लोगों का अधिकांश समय टी.वी. ले लेता है। जब मुझे 'कुरुक्षेत्र' का 'मधुमक्खी पालन' नवम्बर, 1994 का अंक मिला, तो सच जानिये कि अपने इर्द-गिर्द क्षेत्रों का बहुत दूर तक सर्वेक्षण किया। हमने जिले में इस सम्बन्ध में और जानकारी लेने के लिए पता भी किया। मगर अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि यहां कोई भी ऐसा नहीं मिला जो मधुमक्खी पालता हो। वैसे तो मेरा जिला बड़े उद्योगों के लिए विख्यात है। इस जिले को सीमेन्ट, कोयला, एल्यूमिनियम और बिजली उत्पादन की खान माना जाता है; फिर भी मैं निराश नहीं हुआ। अब मैं दूसरे जिलों की टोह ले रहा हूं। मधुमक्खियों के सम्बन्ध में जानकारी भरे लेख प्रकाशित करने के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

आशा है, आप ऐसी ही जानकारियों का खजाना सदैव पेश करते रहेंगे।

सुनील कुमार,
10ए/16, डाला सीमेन्ट फैक्ट्री,
सोनभद्र, उ. प्र.
पिन-231207

आपकी पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' के बारे में अपने मित्रों से बहुत प्रशंसा सुन रखी थी पर पढ़ने का मौका नहीं लग रहा था। अचानक एक दिन अक्तूबर 1994 का अंक पत्रिकाओं की दुकान पर दिखा और जब देखा की बापू गांधी के बारे में है तो खरीद लिया। महात्मा गांधी पर इतने लेख पढ़ कर बहुत प्रसन्नता हुई। आपकी पत्रिका सही में 'गागर में सागर' समेटे हुए है। फिर आपकी पत्रिका के बारे में उत्सुकता बढ़ी और मैं नवम्बर 1994 का अंक भी खरीद लाया। मैं एक अध्ययनरत छात्र हूं और मधुमक्खी और कबूतर पालन के बारे में जानकारी एकत्र कर रहा था। खादी ग्रामोद्योग से भी सम्पर्क किया। इतने में आपकी पत्रिका मिली जैसे अंधे को दो आंखें मिल गई। 'स्वरोजगार के लिए मधुमक्खी पालन' ग्रामीण परिवेश में सही में उत्तम है। जानकारी देने के लिए धन्यवाद। यह एक सराहनीय कदम है।

लघु कथा 'और आगे पढ़ूंगा' प्रेरणादायक है। कहानी 'सज़ा' भी अच्छी लगी। 'मानव जीवन में वनों का महत्व' लेख लोगों में एक नयी उत्सुकता पैदा करने में सफल होगा। आपकी पत्रिका बेरोजगारों की हर दृष्टिकोण से एक आदर्श एवं सच्चा मित्र साबित होगी।

विपिन कुमार,
बार्ड नं.-02, नाका से पश्चिम,
लहेरियागंज, मधुबनी-847211 (बिहार)

पानी से सम्भव है रोगों का इलाज

डा. कमलेश रानी

क्षिति जल पावक गगन समीरा
पंचरचित अति अधम सरीरा

पानी जीवन का एक अनिवार्य तत्व है। पानी शरीर का भोजन भी है और औषधि भी है। पानी का महत्व प्यासा ही समझ सकता है। प्यासे के लिए पानी अमृत है। पानी जीवन है।

जैसे मछली पानी के बिना थोड़े समय भी जीवित नहीं रह पाती है, उसी तरह मनुष्य भी पानी के बिना अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। पानी प्राणी मात्र का जीवन आधार है। शरीर में पानी की कमी मृत्यु का कारण तक बन जाती है।

पानी में अनेक रोगों के निवारण की शक्ति है। इसीलिए प्राकृतिक चिकित्साशास्त्र में मिट्टी, पानी के इलाज पर काफी जोर दिया गया है। पानी सर्वसुलभ उत्तम दवा है। जलने की दशा में जले हुए भाग को तुरन्त थोड़ी देर के लिए पानी में डुबोये रखने से फफोले नहीं पड़ते हैं और जलन भी मिट जाती है। जले को ठीक करने में पानी बहुत कारगर औषधि सिद्ध होता है।

ठण्डे पानी की पट्टी तीव्र ज्वर को उतारने में सहायक होती है। बुखार में अधिक पानी पीना अच्छा रहता है। अधिक पानी पीने से मूत्र रोग होने की संभावना नहीं रहती है। पानी गुर्दे को स्वच्छ और क्रियाशील बनाता है जिससे पथरी बनने की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

पानी पेट के रोगों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्याप्त पानी का सेवन करने वालों को प्रायः कब्ज का रोग नहीं होता है। प्रातः काल तांबे के पात्र में रखा हुआ पानी नियमित रूप से पीने पर उदर के रोग मिटते हैं। प्रातःकाल गुनगुने पानी में नींबू और शहद मिलाकर नियमित पीने से जहां कब्ज से छुटकारा मिलता है वहीं त्वचा में निखार आता है।

गर्मी के दिनों में पेट में समुचित पानी की मात्रा रहने से लू लगने की सम्भावना नहीं रहती है। गर्मियों में पानी की कमी (डिहाइड्रेशन) की बीमारी होने का खतरा अधिक रहता है। उल्टी-दस्त होने पर पानी की पर्याप्त मात्रा शरीर में पहुंचनी चाहिए। इसीलिए उल्टी-दस्त में जीवन रक्षक घोल देने का आग्रह किया जाता है जिससे शरीर में पानी की आवश्यक मात्रा बनी रहे।

गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को शिशु और अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से पर्याप्त मात्रा में पानी पीना चाहिए। फलों का जूस और दूध आदि तीन-चार बार लेना ऐसी महिलाओं को फायदेमन्द रहता है। इन तरल पदार्थों से भी पानी की पर्याप्त मात्रा उनके शरीर में पहुंच जाती है।

पानी ऐसी औषधि है जिसका सेवन करने के साथ बाह्य उपयोग भी किया जाता है। श्रम की थकान से पैरों में होने वाले दर्द को नमक पड़े गर्म पानी से दूर किया जा सकता है। टब में नमक मिला हल्का गर्म पानी भरकर थोड़ी देर के लिए उसमें पैर डुबोने से पैरों के दर्द में राहत मिलती है। पानी से नियमित स्नान करने से शरीर के रन्ध्र खुल जाते हैं और शरीर स्वस्थ रहता है।

"हिमदीप" राधापुरी,
हापुड़-245101 (उ.प्र.)

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि भेजिये। रचनाएं दो प्रतियों में टाइप की हुई हों और उनके साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो अन्यथा उन्हें स्वीकार करना संभव नहीं होगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट, लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

ग्रामीण क्षेत्रों में कारीगरों की कुशलता बढ़ाने के प्रयास

प्रभात कुमार सिंघल

ग्रामीण इलाकों में परम्परागत हस्त शिल्प कारीगरों के कार्य कौशल में वृद्धि करने और उनके द्वारा बनाये गये माल को बेहतर और अधिक टिकाऊ बनाने तथा उनके श्रम और समय की बचत करने के लिए अनेक प्रौद्योगिकियां विकसित की गई हैं। इनकी एक झलक हाल ही में कोटा में आयोजित दशहरे के मेले में देखने को मिली। प्रदर्शनी का आयोजन राजस्थान सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग ने किया था।

ग्रामीणजनों द्वारा पत्तल, दोने, पापड़, ईंट, मिट्टी के वर्तन, खड़िया की चाक, कपड़े धोने का साबुन, पाउडर, मोमबत्ती आदि बनाने का काम परंपरा से किया जाता है। इन कार्यों में श्रम और समय की बचत हो सके इसके लिए उन्नत वैज्ञानिक तकनीक के यंत्रों का आविष्कार किया गया है।

दोना पत्तल बनाने की मशीन

अर्वाचीन परंपरानुसार हमारे देश में धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में भोजन परोसने में दोने-पत्तलों का उपयोग सर्वविदित है। ढाक या बड़ के पत्तों से इन्हें हाथों से बनाया जाता है। इनकी गुणवत्ता बनाये रखने और अधिक समय तक विना टूट-फूट के रह सके इसके लिए केन्द्रीय खाद्य एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान मैसूर में पत्तल-दोने बनाने की मशीन का आविष्कार किया है। इस मशीन में बड़, ढाक, कचनार या केले के सभी प्रकार के पत्ते प्रयोग में लाये जा सकते हैं। पत्तों को आपस में जोड़ने के लिए बारीक पोलिथीन या प्लास्टिक शीट का प्रयोग किया जाता है। इससे उनमें मजबूती आती है तथा रिसाव या छिद्र होने की संभावना कम हो जाती है। दोने-पत्तल आकर्षक कोणीय अथवा गोल आकार में बनाये जा सकते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से ये कीटाणु रहित रहते हैं। आठ घंटे में 1500 से 2000 नग बनाये जा सकते है।

पैडल से चलने वाली मशीन जिसमें बिजली से चलने वाला एक हीटर लगा रहता है मध्यम आकार की 2700 से 3400 रुपये तथा बड़े आकार में 2900 से 3600 रुपये तक मूल्य की होती है।

मध्यम आकार की मशीन में प्रयुक्त होने वाले सांचे (डाई) का मूल्य 960 रुपये अलग से होता है। सांचे अनेक आकार में मिलते हैं। पत्तल बनाने के काम में आनी वाली डाईयां 1440 से 1920 रुपये मूल्य तक की होती है। इस योजना को संचालित करने के लिए 2000 से 4000 रुपये तक कच्चे माल की जरूरत होती है। मशीन प्राप्ति के लिए स्थानीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग से जानकारी ली जा सकती है।

पापड़ बनाने की मशीन

राजस्थान में पापड़ सर्वाधिक लोकप्रिय व्यंजन है। पापड़ों की मांग विदेशों में भी बढ़ी है। परंपरा से पापड़ हाथ से वेलकर बनाये जाते हैं जो श्रम और थकान भरा कार्य है। पापड़ बनाने का काम कुटीर उद्योग के रूप में चलाया जाता है। जिसमें मजदूरी पापड़ के भार पर मिलती है । कम समय और कम श्रम में अधिक उत्पादन हो सके अतः पापड़ बनाने की मशीन बनाई गई। यह पैर से दवाकर तेज दवाव बनाकर पापड़ बेलती है। पापड़ की मोटाई नियंत्रित की जा सकती है। एक बार में चार पापड़ बनाये जा सकते हैं। प्रति घंटा 600 पापड़ बनाये जा सकते हैं जबकि हाथ से वेलने पर इतने समय में 120 पापड़ तक बनाना संभव हो पाता है। मशीन की अनुमानित लागत 5000 रुपये है।

ईंट बनाने की टेवल

हाथ से ईंट बनाने का काम काफी परिश्रम और थकाने वाला है। ईंट बनाने वाली पैर चालित टेवल राजकीय पोलिटेक्नीक, विशाखापटनम (आंध्र प्रदेश) और केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की (उत्तर-प्रदेश) ने अलग-अलग बनाई है। मशीन से एक व्यक्ति और दो सहायक प्रतिदिन 1500 ईंटें बना सकते हैं। यह ईंटें पारंपरिक ईंटों से उन्नत किस्म की समान गुथीले कोनों की होती हैं। ये ईंटें भट्टी की ताप क्षमता को बढ़ाती भी है। अनुमानित लागत प्रतिटेवल लगभग 1000 रुपये आती है।

कुम्हार कार्य में पारंपरिक चाक को चलाने में लगने वाले मानव म की बचत के लिए खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, बम्बई ने यरिंग लगा कुम्हार चाक विकसित किया है।

इस उन्नत चाक को एक तिपाई पर रखा जाता है। जिसके च के हिस्से में दो बाल बियरिंग, एक इस्पात की छड़ तथा लोहे ो कोर या प्लाज होती है, जिससे चक्का घर्षण रहित घूमता है।

यह चलने में हल्का है। ज्यादा सुरक्षित और श्रम की बचत रने वाला है। इससे बर्तन अच्छी किस्म के बनते हैं और उत्पादन भी वृद्धि होती है। इसे खरीदने के लिए राजस्थान खादी एवं ामोद्योग बोर्ड, जयपुर द्वारा ऋण और अनुदान भी दिया जाता । लगभग इतने ही मूल्य का बिजली से चलने वाला चाक (शैला ाक) भी विकसित किया गया है। इससे 40, 60 एवं 100 चक्कर ति मिनट गति पर बर्तन बनाये जा सकते हैं। इसमें एक अश्व क्ति के आठवें हिस्से के बराबर शक्ति वाली बिजली की मोटर गी होती है, जो 230 वोल्ट ए. सी. सिंगल फेज द्वारा चलती ।

लिखने की चाक बनाना

अनेक परीक्षणों में यह पाया गया कि 70 प्रतिशत प्लास्टर ाफ पेरिस और 30 प्रतिशत बुझे हुए चूने के मिश्रण से उत्तम णी की चाक बनाई जा सकती है। यह कम लागत वाली होती । गांवों में स्त्रियां और बेरोजगार युवक इस व्यवसाय को लघु द्योग के रूप में अपना सकते हैं।

चूना प्रमुख कच्चा माल है। अन्य सामान में चाक बनाने का एल्यूमीनियम का सांचा, स्पेनर पानों का सेट, चाकू एक, 500 सी. सी. के दो बीकर, प्लास्टिक की एक बाल्टी, चाक सुखाने की ट्रे, तराजू, ट्रे लकड़ी या प्लास्टिक की, लकड़ी का हथौड़ा, ब्रुश एवं तेल की आवश्यकता होती है।

चाक बनाने के लिए विधि और सांचे प्राप्त करने के लिए निकटतम जिला उद्योग केन्द्र अथवा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग कार्यालय से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इसी प्रकार मोमबत्ती बनाने, साबुन बनाने, कपड़े धोने का पाउडर और बर्तन धोने का पाउडर बनाने की कम समय और कम लागत में अधिक उत्पादन वाली विधियां विकसित की गई हैं। ग्रामीण ईंधन की बचत के लिए, सफारी चूल्हा एवं सूर्य ऊर्जा से चालित सोलर कूकर, कुओं हेतु बाल बियरिंग वाली घिर्री, छर्रे वाली नई हाथ की चक्की, धोरे बनाने का यंत्र (बन्ड फार्मर), मेड़ बनाने का हल, त्रिफाली एंव मूंगफली छीलक यंत्र आदि विकसित किये गये हैं।

केन्द्र सरकार द्वारा संचालित सामुदायिक पालीटेक्नीक योजना और विज्ञान व तकनीकी विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित ग्रामीण प्रौद्योगिकी प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा गांवों के सर्वांगीण विकास एवं वहां नया तकनीकी ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन निरंतर किये जाते हैं। प्रशिक्षण की अवधि 3 से 15 दिवस होती है। एक से छः माह तक विशिष्ट प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

सूचना एवं जनसंपर्क अधिकारी,
कोटा - 324001,
राजस्थान

अधिकारों की उत्पत्ति का सच्चा स्रोत कर्तव्यों का पालन है। यदि हम सब अपने कर्तव्यों का पालन करें, तो अधिकारों को ज्यादा ढूंढने की जरूरत नहीं रहेगी। लेकिन यदि हम कर्तव्यों को पूरा किये बिना अधिकारों के पीछे दौड़ें, तो वह मृग-मरीचिका के पीछे पड़ने जैसा ही व्यर्थ सिद्ध होगा। जितने हम उनके पीछे जायेंगे उतने ही वे हमसे दूर हटते जायेंगे। यही शिक्षा श्री कृष्ण ने इन अमर शब्दों में दी है : "तुम्हारा अधिकार कर्म में ही है, फल में कदापि नहीं।" यहां कर्म कर्तव्य है और फल अधिकार।

–महात्मा गांधी

रेगिस्तान में, जहां पशुपालन जीविका का मुख्य व्यवसाय है, एक गौशाला में संकर नस्ल की गऊएं।

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/95
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालन
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

R.N./708/57
P & T Regd. No. D/(DL) 12057/95
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

आपकी जरूरत, हमसे बेहतर जाने कौन ?

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा परीक्षाओं (प्रारम्भिक तथा मुख्य) के सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र की बेहतर तैयारी के लिए प्रस्तुत है – परीक्षोपयोगी सीरीज

एक सरल एवं उच्चकोटि की परीक्षोपयोगी सीरीज

सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के लिए महत्त्वपूर्ण उपयोगी, प्रामाणिक एवं विश्लेषणात्मक सामग्री आपकी जरूरत के अनुसार क्योंकि वर्षों के अनुभव से हम जानते हैं कि कब आपको क्या चाहिये।

परीक्षोपयोगी सीरीज 1	भारतीय अर्थव्यवस्था	मूल्य – रू. 50.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 2	भूगोल–भारत एवं विश्व	मूल्य – रू. 45.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 3	भारतीय इतिहास	मूल्य – रू. 40.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 4	भारतीय राजव्यवस्था	मूल्य – रू. 40.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 5	भारतीय कला एवं संस्कृति	मूल्य – रू. 40.00
परीक्षोपयोगी सीरीज 6	सामान्य विज्ञान	मूल्य – रू. 50.00

हिन्दी की सर्वाधिक बिकने वाली सामान्य ज्ञान पत्रिका

जब उपलब्ध हैं सामान्य अध्ययन के लिए अतिरिक्तांक

तब क्या करेंगे भात्र विशेषांक ?

आज ही अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से खरीदें या पूरा मूल्य निम्न पते पर भेज कर प्राप्त करें

प्रतियोगिता दर्पण 2/11, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा – 282002 फोन – 351002, 350002, 351238 फैक्स – 0562-351251